এক্ষণ

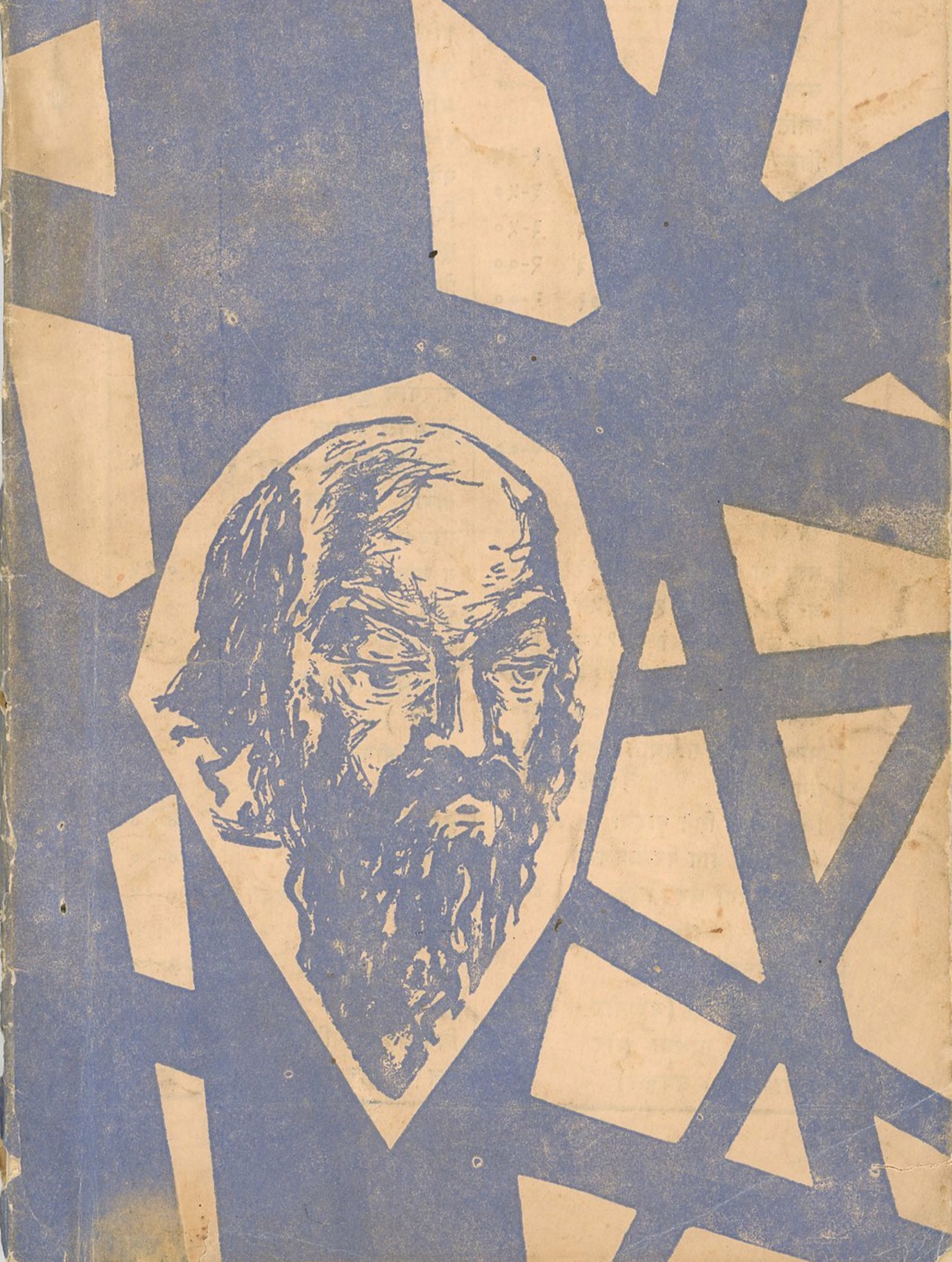

जीवन जागृति केंद्र बम्बई द्वारा प्रकाशित

आचार्य रजनीश साहित्य

पुस्तक	पृष्ठ	मूल्य
साधना-पथ	१५४	३-००
क्रांति-बीज	१३८	४-००
सिंहनाद	८०	१-२५
मिट्टी के दिये	१९६	३-५०
पथ के प्रदीप	२१३	३-५०
मैं कौन हूं ?	१०३	२-००
अज्ञात की ओर	७१	२-००
नये संकेत	७३	१-७५
संभोग से समाधि की ओर	१६७	३-५०
अन्तर्यात्रा	२२२	३-५०
शांति की खोज (सुश्री उर्मिला द्वारा ऋचाओं का संकलन)	१०४	२-००
सत्य की खोज	१२३	३-००
अस्वीकृति में उठा हाथ	१५४	५-००
प्रभु की पगडंडियां	१५८	४-००
शून्य की नाव	११६	३-००
सत्य की पहली किरण	१८८	६-००
समाजवाद से सावधान	१२४	३-५०
प्रेम के फूल	१८०	५-००
जिन खोजा तिन पाइयां (कुंडलिनी योग पर प्रवचन)		२०-००
ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया (पंच महाव्रत पर १२ प्रवचन)		४-००
महावीर और मैं (महावीर के जीवन, साधना और शिक्षा पर २४ प्रवचन)		३०-००

पुस्तिकायें	पृष्ठ	मूल्य
अमृत-कण	२४	०-६०
अहिंसा-दर्शन	३२	०-५०
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	५५	१-००
नये मनुष्य के जन्म की दिशा	४०	०-७५
सूर्य की ओर उड़ान	६५	१-००
प्रेम के पंख	५७	०-७५
सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	५५	१-५०
नारगोल युवक युवतियों के समक्ष प्रवचन	२०	०-२५
क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार (भारत के साधु-संत)	३०	०-३५
न आंखों देखा, न कानो सुना (गोपनीय गांधी)	८	०-१५
क्रांति की नयी दिशा, नयी बात (नारी और क्रांति)	३१	०-३०
व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज	२०	०-२५
युवक कौन		०-३०
युवा और यौन		०-३०
बिखरे फूल (बोध वचन संकलन)	३६	०-३५
संस्कृति के निर्माण में सहयोग	२८	०-३०
विवाह और परिवार	३२	१-००
मन के पार	८५	१-००

भगवान श्री रजनीश की सृजनात्मक
जीवन दृष्टि की मासिक
संकलन पत्रिका

युक्रांद

अक्टूबर १९७१

वर्ष : ३ अंक : ७ : ८

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
,, वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रांद

अनुक्रमणिका

अक्टूबर
१९७१

मानसेवी—

सम्पादक :
अरविन्द कुमार

उप-सम्पादक :
आलोक पाण्डे
'आकुल' राजेन्द्र

सौजन्य सम्पादक :
कनु शेठ

व्यवस्थापक :
स्वामी धर्म सरस्वती

पृष्ठ :		
१	सत्य : एक दर्पण ··· ··· ···	बोध कथा
३	'जीवन ही है प्रभु' ··· ··· (प्रवचन)	संकलन, मा योग मीरा, जूनागढ़
२७	पत्रों के अमृत आलोक से ··· ··· ···	भगवान श्री के पत्र प्रेमी साधकों को
३०	हंसते-हंसते जाना है ··· ···	कृष्णदत्त दीक्षित
३२	स्त्री-पुरुष जाति भेद ···	संकलन, एन० जी० बखारिया
५२	ध्यान के अनुभव ··· ··· ···	एक पत्र
५३	आबू साधना शिविर (२) : बस तीत ही तीत ··· ···	स्वामी अगेह भारती
५९	प्रेमी पाठकों के पत्र ··· ···	भगवान श्री के नाम
६०	दो अमृत-पत्र ··· ··· ···	मा योग क्रांति (मीनू) को
६२	युक्रांद की आधार शिलायें ··· ···	प्रेमियों का आर्थिक अंशदान

गीत : काव्य

२	भगवान श्री रजनीश के प्रति ··· ···	स्वामी अगेह भारती
२६	सागर के बीच मछरिया ···	'आकुल' राजेन्द्र
३१	प्रेम...! प्रेम.. ! प्रेम...! ...	स्वामी अगेह भारती

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट–टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर.

सत्य : एक दर्पण

(भगवान श्री की बोध कथाओं से)

प्रत्येक व्यक्ति एक दर्पण है। सुबह से साँझ तक इस दर्पण पर धूल जमती है और जो इस धूल को जमते ही जाने देते हैं, वे दर्पण नहीं रह जाते। और जैसा स्वयं का दर्पण होता है, वैसा ही ज्ञान होता है। जो जिस मात्रा में दर्पण है, उस मात्रा में ही सत्य उसमें प्रतिफलित होता है।

०००

एक साधु से किसी व्यक्ति ने कहा कि विचारों का प्रवाह उसे बहुत परेशान कर रहा है। उस साधु ने उसे निदान और चिकित्सा के लिए अपने एक मित्र साधु के पास भेजा और उससे कहा : 'जाओ और उसकी समग्र जीवन चर्या ध्यान से देखो। उससे ही तुम्हें मार्ग मिलने को है।'

वह व्यक्ति गया। जिस साधु के पास उसे भेजा गया था, वह एक सराय में रखवाला था। उसने वहां जाकर कुछ दिनों तक उसकी चर्या देखी लेकिन उसे उसमें कोई खास बात सीखने जैसी दिखाई नहीं पड़ी। वह साधु अत्यन्त सामान्य और साधारण व्यक्ति था। उसमें कोई ज्ञान के लक्षण भी दिखाई नहीं पड़ते थे। हां, बहुत सरल था और शिशुओं जैसा निर्दोष मालूम होता था, लेकिन उसकी चर्या में तो कुछ भी नहीं था ?

उस व्यक्ति ने साधु की पूरी दैनिक चर्या देखी थी, केवल रात्रि में सोने के पहले और सुबह जागने के बाद वह क्या करता था, वही भर उसे ज्ञात नहीं हुआ था। उसने उससे ही पूछा। साधु ने कहा : 'कुछ भी नहीं। रात्रि को मैं सारे बर्तन माँजता हूं और चूंकि रात्रि भर में उनमें थोड़ी बहुत धूल पुनः जम जाती है, इसलिये सुबह उन्हें फिर धोता हूं। बर्तन गंदे और धूल भरे न हों, यह ध्यान रखना आवश्यक है। मैं इस सराय का रखवाला जो हूं।'

वह व्यक्ति इस साधु के पास से अत्यन्त निराश हो अपने गुरु के पास लौटा। उसने साधु की दैनिक चर्या और उससे हुई बातचीत गुरु को बताई।

उसके गुरु ने कहा : 'जो जानने योग्य था, वह तुम सुन और देख आये हो। लेकिन समझ नहीं सके। रात्रि को तुम भी अपने मन को माँजो, और सुबह उसे पुनः धो डालो। धीरे-धीरे चित्त निर्मल हो जायेगा। सराय के रखवाले का इस सबका ध्यान रखना बहुत आवश्यक है।'

०००

चित्त की नित्य सफाई अत्यन्त आवश्यक है। उसके स्वच्छ होने पर ही समग्र जीवन की स्वच्छता या अस्वच्छता निर्भर है। जो उसे विस्मरण कर देते हैं, वे अपने ही हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारते हैं।

——

भगवान श्री रजनीश के प्रति

—स्वामी अगेह भारती

मैं चारों ओर देखता हूं
और सभी को तुझे ही ढूंढ़ते पाता हूं.
कोई ढूंढ़ता है शराब में
कोई कबाब में
कोई मंदिर में, कोई मस्जिद में
कोई किसी किताब में.....
जाने—अनजाने
सब तेरे ही प्यासे हैं
और सबका प्यासा है तू.
अच्छा हो अगर कहूं कि
सब तुझसे ही है!
सब तुझ में ही हैं!
सब तू ही है!
सच, अब 'तुझ में' और 'सब में' फर्क
करना मुश्किल तो है ही—
अन्याय भी है! पाप भी है!!

० ० ०

'जीवन ही है प्रभु'

जूनागढ़ साधना शिविर में भगवान श्री द्वारा दिया गया द्वितीय प्रवचन

संकलन : मा योग मीरा, जूनागढ़

एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान से यदि जीवन में शांति हो जाती है तो फिर ध्यान सारे देश में फैल क्यों नहीं जाता है ?

पहली बात तो यह कि बहुत कम लोग हैं पृथ्वी पर, जो शांत होना चाहते हैं। शांत होना बहुत कठिन है। असल में शांति की आकांक्षा को उत्पन्न करना ही बहुत कठिन है। और कठिनाई शांति में नहीं है; कठिनाई इस बात में है कि जब तक कोई आदमी ठीक से अशांत न हो जाय, तब तक शांति की आकांक्षा पैदा नहीं होती। पूरी तरह अशांत हुए बिना कोई शांत होने की यात्रा पर नहीं निकलता। और हम पूरी तरह अशांत नहीं हैं। यदि हम पूरी तरह अशांत हो जायँ तो हमें शांत होना ही पड़ेगा। लेकिन हम इतने अधूरे जीते हैं कि शांति तो बहुत दूर, अशांति भी पूरी नहीं हो पाती है। हमारी बीमारी भी इतनी कम है कि हम चिकित्सा की तलाश में भी नहीं निकलते। जब बीमारी बढ़ जाती है तो चिकित्सा की खोज शुरू होती है। लेकिन हम बचपन से ही इस भाँति पाले जाते हैं कि हम कुछ भी पूरी तरह नहीं कर पाते हैं कि अशांत हो जायँ। न हम चिंता पूरी तरह कर पाते हैं कि मन व्यथित हो जाय। न हम द्वेष पूरी तरह कर पाते हैं, न घृणा पूरी तरह कर पाते हैं कि मन में आग लग जाय और नर्क पैदा हो जाय। हम इतने कुनकुने जीते हैं कि कभी आग जल ही नहीं पाती और इसलिये पानी खोजने को हम नहीं निकलते जो उसे बुझाते। हमारा कुनकुना जीना ही, 'ल्यूकवार्म लिविंग' ही हमारी कठिनाई है। तो आज कोई मुझसे पूछता है कि जब शांत होना इतना आसान है, तो बहुत लोग शांत क्यों नहीं हो जाते ? पहली बात तो यह है कि वे अभी ठीक से अशांत ही नहीं हो गये हैं, उन्हें अशांत होना पड़ेगा। शांत तो आदमी क्षण भर में हो जाता है। अशांत होने के लिये कई जन्म लेने पड़ते हैं, लम्बी यात्रा करनी पड़ती है। यह इतने जन्मों की हमारी यात्रा है, यह शांति की यात्रा नहीं है। शांति तो क्षण भर में घटित हो जायगी। यह इतने जन्मों की यात्रा हमारे अशांत होने की यात्रा है। जब हम

पूरी तरह अशांत हो जाते हैं, जब अशांति की चरम अवस्था आ जाती है, वह 'क्लाइमेक्स' आ जाता है, तब लौटना शुरू हो जाता है।

बुद्ध एक गांव में गये थे। और जो आज मुझसे आपने पूछा है, एक आदमी ने आके उनसे भी पूछा था। उस आदमी ने उनसे कहा था कि चालीस वर्षों से निरन्तर आप गांव-गांव घूमते हैं, कितने लोग शांत हुए ? कितने लोग मोक्ष पहुंच गये ? कितने लोगों का निर्वाण हो गया ? कुछ गिनती है ? कुछ हिसाब है ? वह आदमी बड़ा हिसाबी रहा होगा। बुद्ध को उसने मुश्किल में डाल दिया होगा, क्योंकि बुद्ध जैसे लोग खाता-बही लेके नहीं चलते कि हिसाब लगाके रखें कि कौन शांत हो गया, कौन शांत नहीं हुआ। बुद्ध की की कोई दुकान तो नहीं है कि हिसाब रखें। बुद्ध मुश्किल में पड़ गये होंगे।

उस आदमी ने कहा—"बताइये चालीस साल से घूम रहे हैं, क्या फायदा घूमने का ?

बुद्ध ने कहा—"एक काम करो सांझ आ जाना, तब तक मैं भी हिसाब लगा लूं। और एक छोटा-सा काम है, वह भी तुम कर लाना, फिर मैं तुम्हें उत्तर दे दूंगा।"

उस आदमी ने कहा—"बड़ी खुशी से, क्या काम है ? वह मैं कर लाऊंगा और सांझ आ जाता हूं। हिसाब पक्का रखना, मैं जानना ही चाहता हूं, कितने लोगों को मोक्ष मिला है, कितने लोगों ने परमात्मा पा लिया है, कितने लोग आनन्द को उपलब्ध हो गये हैं ? क्योंकि, जब तक मुझे यह पता न लग जाय कि कितने लोग हो गये हैं, तब तक मैं निकल भी नहीं सकता यात्रा पर, क्योंकि पक्का पता तो चल जाय, किसी को प्राप्त हुआ भी है या नहीं ?"

बुद्ध ने उससे कहा कि एक कागज ले जाओ और गांव में एक-एक आदमी से पूछ आओ कि उसकी जिंदगी की आकांक्षा क्या है ? वह चाहता क्या है ? वह आदमी गया। छोटा-सा गांव था। सौ-पचास लोगों की झोपड़ियां थीं छोटी-छोटी-सी। उसने एक-एक घर में जाके पूछा तो किसी ने कहा कि धन की बहुत जरूरत है। और किसी ने कहा कि बेटा नहीं है, बेटा चाहिए। किसी ने कहा, और तो सब ठीक है, लेकिन पत्नी नहीं है, पत्नी चाहिये। किसी ने कहा, और सब ठीक है, लेकिन स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है, बीमारी पकड़ी रहती है, इलाज चाहिये, स्वास्थ्य चाहिये। कोई बूढ़ा था, उसने कहा कि उम्र चुकने के करीब आ गयी है, अगर थोड़ी उम्र मिल जाय, और सब तो बस ठीक है। सारे गांव में घूमकर सांझ को जब

वह लौटने लगा, तो रास्ते में डरने लगा कि बुद्ध से क्या कहूंगा जाकर ! क्योंकि उसे ख्याल आ गया कि शायद बुद्ध ने उसके प्रश्न का उत्तर ही दिया है। गांव भर में एक आदमी नहीं मिला, जिसने कहा हो कि शांति चाहिये-- जिसने कहा हो, परमात्मा चाहिये—जिसने कहा हो, आनन्द चाहिये। सुबह बुद्ध मुश्किल में पड़ गये थे, सांझ वह आदमी मुश्किल में पड़ गया। वह आदमी बुद्ध के पास पहुंचा तो बुद्ध ने कहा, "ले आये हो ?" उस आदमी ने कहा, "ले तो आया हूं।" बुद्ध ने कहा, "कितने लोग शांति चाहते हैं ?" उस आदमी ने कहा, "एक भी नहीं मिला गांव में !" बुद्ध ने कहा, "तू चाहता है शांति तो रुक जा।" उसने कहा, "लेकिन अभी तो मैं जवान हूं, अभी शांति लेकर क्या करूंगा ! जब उम्र थोड़ी ढल जाय तो मैं आऊंगा आपके चरणों में। अभी तो वक्त नहीं है, अभी तो जीने का समय है।" तो बुद्ध ने कहा, "फिर पूछता है वही सवाल कि कितने लोग शांत हो गये ?" उसने कहा, "अब नहीं पूछता हूं।" कोई किसी को शांत नहीं कर सकता है।

लेकिन हम शांत हो सकते हैं, पर अशांत हो गये हों तब ही। असल में हम अशांत ही नहीं हो पाते हैं। चरम नहीं हो पाती अशांति। बीमारी वहां नहीं पहुंच जाती, जहां बीमारी टूट जाती है। **हमने कुछ भी कभी पूरी तरह नहीं किया है।** इसलिए मेरी दृष्टि में हिसाब और है। मेरी दृष्टि में हिसाब यह है कि **आने वाली जो मनुष्यता होगी, उसमें हम एक-एक बच्चे को पूरी तरह क्रोध करना सिखायेंगे। यह नहीं सिखायेंगे बचपन से कि क्रोध बुरा है। क्योंकि क्रोध बुरा है, इसका सिर्फ एक ही परिणाम होता है। क्रोध तो नहीं मिटता, केवल क्रोध अधूरा लटका रह जाता है।** न वह पूरा हो पाता है, न वह मिट पाता है। जिंदगी भर क्रोध और अक्रोध और क्रोध भी तथा पश्चाताप भी। आदमी को हमने बड़ी मुश्किल में डाल दिया है। **क्रोध भी नहीं मिटता और क्रोध के लिए पश्चाताप भी करना पड़ता है। अब क्रोध एक बीमारी है और पश्चाताप दूसरी बीमारी है।** क्रोध करो, फिर दुखी हो—पछताओ; फिर क्रोध करो, फिर एक 'वीसियस सर्किल' एक चक्कर, जो जिंदगी भर चलता है। सुबह क्रोध करो, सांझ पछताओ; रात भर में फिर तैयारी करो। और ऐसा ही जिंदगी भर चलता है। कितनी बार आप पछताए ? लेकिन पछताने से क्या बना-बिगड़ा ! **पछताने से सिर्फ एक फायदा होता है कि पछताके आप फिर पुरानी अवस्था में पहुंच जाते हैं, जहाँ क्रोध के पहले थे, ताकि अब फिर क्रोध कर सकें।** पछताना सिर्फ क्रोध को लीपना-पोतना है—रिपेन्टेंस, पछतावा, प्रायश्चित,......वह जो हमारे अहंकार को चोट लग गयी। मैंने किसी को गाली दे दी और मैं क्रोध से भर गया, मेरे अहंकार को बड़ी चोट लग गयी, क्योंकि मैं अपने को भला आदमी

समझता था, जो गाली नहीं दे सकता है—जो क्रोध नहीं कर सकता है। अब क्रोध कर दिया—अब गाली दे दी, अब मैं पछताके फिर भला आदमी होने की कोशिश करता हूं। पछताके यह मैं कहता हूं कि कुछ भूल हो गयी, कुछ नासमझी हो गयी, यह मुझसे कैसे हो सकता है! कुछ बेहोशी हो गयी। वह तो कुछ स्थिति ऐसी थी कि मुंह से निकल गया, अन्यथा मुझसे कैसे हो सकता है! मैं क्षमा भी मांगता हूं, जाकर हाथ भी जोड़ता हूं कि मुझे माफ कर दो। मैं असल में अपने बिखरे अहंकार को फिर से जुड़ाने की कोशिश कर रहा हूं। **जब मैं माफ हो जाऊंगा और पछता लूंगा और दुखी हो लूंगा और एक दिन उपवास कर लूंगा पछतावे में, दूसरे दिन फिर मैं पुरानी जगह वापिस लौट जाऊंगा।** अब मैं फिर अच्छा आदमी हो गया, जो न गाली देता है— न क्रोध करता है। **अच्छा आदमी हुआ ही इसलिए कि तब फिर गाली देने की सुविधा जुटा सकूं।** अब मैंने फिर गाली देने की तैयारी कर ली, अब मैं गाली दे सकता हूं, अब मैं क्रोध कर सकता हूं।

हम बच्चों को सिखाते हैं, क्रोध बुरा है, क्रोध पाप है, क्रोध मत करो। परिणाम यह नहीं होता कि क्रोध न करते हों। यह तो हो नहीं सकता है। **सिर्फ क्रोध अधूरा रह जाता है, कभी पूरा नहीं हो पाता और कभी वह क्रोध की पीड़ा को पूरा अनुभव नहीं कर पाते हैं। क्रोध की अग्नि से पूरे गुजर नहीं पाते और तब अक्रोध तक पहुंचने का सवाल नहीं उठता। तब शांति की खोज का सवाल नहीं उठता। अभी जो अशांत ही नहीं हो सका है, वह शांत कैसे हो सकता है!** अभी जिसकी इतनी भी पात्रता नहीं है कि अशांत हो जाय, अभी उसकी इतनी पात्रता कैसे होगी कि वह शांत हो सके! यह बातें उल्टी लगेंगी देखने में, लेकिन मैं आपसे यह कह रहा हूं कि जो **ठीक से अशांत हो सकता है, वही केवल शांति के मार्ग पर यात्रा करता है।** और जो ठीक से क्रोध करके क्रोध को जीत लेता है—उसके पूरे जहर, उसके कांटे-कांटे में छिद जाता है— उसकी आग की लपटों में जल जाता है— जो क्रोध को पूरी तरह पी लेता है, वह फिर दुबारा क्रोध करने में असमर्थ हो जाता है। वह शांति की यात्रा पर निकल जाता है।

मेरी दृष्टि में बच्चों को सिखाया जाना चाहिए कि ठीक से वे कैसे क्रोध करें, जोर से, ठीक से, पूर्णता से, क्रोध का पूरा अनुभव उन्हें बता दें कि क्रोध करना अपने को जलाना है, ताकि—क्रोध का उन्हें दर्शन हो जाय, क्रोध की पूरी प्रतीति हो जाय; क्रोध के कीड़े उनको दिखाई पड़ जायं; क्रोध की जहरीली लपटें उन्हें चारों तरफ से घेर लें; उन्हें दर्शन हो जाय कि यह है क्रोध। और जिस आदमी ने एक दफे पूरे क्रोध को देख लिया, वह

दोबारा क्रोध करने की क्षमता नहीं जुटाता। **कौन पागल है जो अपने को आग में डालता हो! लेकिन हम अपने को आग में ही नहीं डाल पाये इसलिए निकलने का सवाल नहीं उठता है।** हमारे सारे बुनियादी संस्कार गलत हैं। और उनकी वजह से हम अशांत ही नहीं हो पाते, तो शांत होने की बात कैसे उठेगी। निश्चित ही ध्यान से शांति उपलब्ध हो सकती है। लेकिन ध्यान की तरफ वे ही आकर्षित होंगे, जो अशांत हो चुके हैं। हम वहां नहीं पहुंच गये हैं, जहां अशांति हमें जिंदगी को मिटाती हुई मालूम पड़ती हो। हम उस कगार पर नहीं पहुंच गये हैं, जहां आगे खड्ड है और एक कदम उठायेंगे तो अंतहीन खड्ड में गिर जायेंगे। अगर हम वहां पहुंच गये होते तो हम वापिस लौटते, क्योंकि कौन गिरेगा उस खड्ड में? जहां अंतहीन गहराइयां हैं और जहां मृत्यु के सिवाय कुछ दिखाई न पड़ता हो। आपने कभी ऐसी अशांति का अनुभव किया है, **जहाँ से एक कदम और आगे उठाने पर सिवाय मृत्यु के कुछ शेष न रह जाय?** अगर नहीं किया है तो अभी आप अशांत ही नहीं हुए हैं—अभी आप अशांति के रास्ते पर आधे ही पहुंचे हैं और गुरुजन मिल जाते हैं इसी आधे रास्ते पर, कहने वाले कि चलिये हम आपको शांत होने का मार्ग बताये देते हैं, शांत हो जाइये। **तो आपके कदम तो अशांति की तरफ बढ़ते रहते हैं और आप सोचते हैं कि चलो रास्ते चलते अगर शांति भी मिलती हो तो दो हाथ इस पर भी मार लिये जायँ।** चलते रहते हैं अशांति की तरफ, क्योंकि अभी अशांति का रस ही नहीं ले पाये कि उससे मुक्त हो सकें। **असल में जिस चीज से भी मुक्त होना हो, उसके पूरे रस का अनुभव जरूरी है। अगर बुराई से भी मुक्त होना हो, तो बुराई की गहराइयों में उतरना जरूरी है। असल में पापी हुए बिना कोई कभी महात्मा न हुआ है, न हो सकता है। असल में जिसे आकाश की ऊंचाइयां छूनी हों उसे पाताल की गहराइयाँ भी छूनी पड़ती हैं। देखे हैं दरख्त जो आकाश की तरफ उठते हैं और चांद-तारों को छूते हुए मालूम पड़ते हैं? उनकी जड़ें नीचे पाताल में उतर जाती है, तभी वे ऊपर उठ पाते हैं।** जिस दरख्त को आकाश छूना हो, उस दरख्त को पाताल भी छूना पड़ता है। जितनी जड़ें नीचे गहरी जाती हैं, उतना दरख्त ऊपर ऊंचा चला जाता है। **हम कुछ ऐसे लोग हैं कि जड़ें ही पूरी गहरी नहीं जा पातीं, आकाश की तरफ उठने का सवाल कहाँ है! और ध्यान रहे जितनी नीचे गहराई होगी उतनी ही ऊपर ऊंचाई हो सकती है।** इससे अन्यथा कोई उपाय नहीं। तो हमें जो संस्कृति मिली है अधूरी, 'इम्पोटेन्ट', नपुंसक, जो कुछ भी करना नहीं सिखाती, जो ठीक अर्थों में क्रोध भी करना नहीं सिखाती। **अधूरे—अधजले, न इस पार**

न उस पार, आदमी अटका रह जाता है। मैं तो कहता हूं, क्रोध भी करना हो तो ठीक से करना, एक ही बार कर लेना ताकि बार-बार करने की जरूरत ही न रहे। और चिंतित होना हो तो ठीक से चिंतित हो लेना और द्वेष करना हो, दुश्मनी करनी हो, तो ठीक से ही कर लेना ही बाहर हो जाने का रास्ता है। लेकिन कुछ भी हमने ठीक से नहीं किया है। इसलिये मैं कहता हूं, अशांत ही हम नहीं हैं। हां, जो अशांत हैं, वह शांत हो सकते हैं। इसलिए मुझे लगता है कि पश्चिम के मुल्कों में शांति की लहरें हर वर्ष बढ़ती चली जायेंगी, क्योंकि पश्चिम के लोग बड़े खुले मन से अशांत हुए हैं। आज 'अमेरिका' में ध्यान के लिये जितनी अभीप्सा, जैसी प्यास है, वैसी हमारे भीतर नहीं है। आज यूरोप में, यूरोप के बुद्धिमान वर्ग में जिस भांति योग की, समाधि की खोज है, वैसी हमारे बुद्धिमान वर्ग में नहीं है। उसका कारण है। उन्होंने अगर अशांत भी होना चाहा है तो ठीक से वे अशांत हुए हैं। अगर उन्होंने भौतिकवादी होना चाहा है, तो फिर उन्होंने कुछ बकवास नहीं सुनी, वे ठीक से भौतिकवादी हो गये। **और जब कोई आदमी ठीक से भौतिकवादी हो जाता है, तो सीमा आ जाती है, जहाँ से अध्यात्म शुरू होता है। लेकिन ठीक से भौतिकवादी ही कोई नहीं हो पाता है, हमारे मुल्क में, अध्यात्मवादी होना असंभव है।** पहले कम से कम भौतिकवादी तो कोई हो जाय, वह भी हम नहीं हो पाते तो हम अधूरे मकान बनाते हैं।

मैंने सुना है : एक फकीर के पास कोई पूछने गया कि तुम कैसे उपलब्ध हो गये परमात्मा को? उस फकीर ने कहा कि **मैंने परमात्मा की फिक्र ही न की, मैंने संसार की ही पूरी फिक्र की। लेकिन जब मैं गहरा उतरा, और गहरा, और गहरा उतरा तो सीमा आ गयी। और सीमा पर मुश्किल हो गयी, फिर पीछे लौटना जरूरी हो गया।** उस आदमी ने कहा—मैं समझा नहीं। तो उस फकीर ने कहा—आओ मैं तुम्हें पास के एक खेत पर ले चलता हूं। जैसा उस खेत का मालिक है, ऐसे दुनिया के लोग हैं। वो उसे खेत पर ले गया। उस खेत का मालिक बड़ा अद्‌भुत होगा, ठीक आप जैसा होगा, हम जैसा होगा। उस खेत के मालिक ने खेत में आठ गड्ढे खोदे थे—कुआं बनाने के लिये। पहले एक गड्ढा खोदा। आठ हाथ खोदा फिर छोड़ दिया। सोचा अब तक पानी नहीं आता, दूसरा खोदें। फिर आठ हाथ खोदा, उसने सोचा इसमें भी पानी नहीं आता, उसने तीसरा गड्ढा खोदा। उसने आठ गड्ढे खोदे तो पूरा खेत खराब हो गया, लेकिन अभी कुआं नहीं खुदा था। उस फकीर ने कहा कि देखते हो इस खेत के मालिक को? यह कभी कुआं न खोद पायेगा, क्योंकि यह पूरा खोदता ही नहीं है। खोदे तो पानी आ जाय,

मिट्टी खतम हो जाय। लेकिन यह अधूरा खोदता है, फिर दूसरा खोदना शुरू कर देता है, फिर तीसरा। एक ही कुआं खोदने से काम हो सकता था। आठ से भी काम नहीं हुआ, क्योंकि पानी तो आया ही नहीं कि बीच से ही लौट आया था। और जितनी खुदाई इसने की है, इतनी खुदाई से एक कुआँ कभी का खुद गया होता। खुदाई तो इसने काफी की है, लेकिन अलग-अलग जगह की है—एक ही गड्ढे पर नहीं की है। हम भी उस खेत के मालिक जैसे लोग हैं। **हम जिंदगी में जाते हैं, लेकिन कहीं भी हम पूरे नहीं गये। किसी भी आयाम में, किसी भी दिशा में हमारी गति पूरी नहीं है।** अगर एक आदमी धन ही कमा ले पूरी तरह से तो धन से मुक्त हो जायगा। लेकिन इधर धन कमाता है, उधर किताब में पढ़ता है कि धन बिलकुल पाप है। इधर रोज किताब भी पढ़ता है, **उस गुरू के पास भी जाता है जो धन को गाली दे रहा है। और दिन भर दुकान में धन कमाता है और सांझ गुरू के चरणों में बैठके धन की निंदा सुनता है। ऐसे दोहरे गड्ढे खोदता है जो कभी पूरे नहीं हो पाते।** क्योंकि उल्टे गड्ढे कैसे पूरे हो सकते हैं। **इधर स्त्रियों के पीछे भागता रहता है और उधर किताबों में ब्रह्मचर्य के उपदेश पढ़ता रहता है।** उल्टे गड्ढे खोदते हैं, वह कभी अर्थ नहीं लाते हैं। तो दोनों काम साथ चलते हैं।

यह जो हमने अधूरा-अधूरा आदमी पैदा किया है, इसकी वजह से कठिनाई पैदा हो गई है, **इसलिए हम पुरानी संस्कृतियों से दबे हुए लोग धार्मिक भी नहीं हो पाते हैं। अधार्मिक होने की हिम्मत ही खो दी है, तो धार्मिक होने की हिम्मत तो बहुत बड़ी चीज है।** मेरी बात आप समझ रहे हैं? अधार्मिक होने की हिम्मत तक हमारी नहीं है। **झूठ बोलने तक की हिम्मत नहीं, सच बोलना तो बहुत दूर की बात है।** झूठ बोलने में भी हिम्मत की जरूरत पड़ती है। झूठ भी हर कोई नहीं बोल देता। **झूठ बोलने तक में कमजोर हो गये हैं और सच बोलने के उपाय सोच रहे हैं।** सच बोलना तो बहुत हिम्मत की बात है। उसका तो मुकाबला ही नहीं, वह तो पूरी हिम्मत आये तभी कोई सच बोल सकता है। लेकिन **जो झूठ बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाते, उनको हम कहते हैं कि यह बड़े सच बोलने वाले हैं। जो चोरी करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते, वह अचोर बन गये और जो हिंसा करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते वे अहिंसा के पुजारी हैं। सब हमने विकृत और उल्टा कर लिया और अधूरा करके उल्टा कर लिया है।** मेरी बात इसलिये बहुत अजीब मालूम पड़ती है, क्योंकि मैं यह कहता हूं कि **अगर धार्मिक होना हो तो पहले अधार्मिक होने की पूरी हिम्मत से यात्रा कर लो।** रुकना मत। किसी के बुलाये मत रुकना, किसी के चिल्लाये मत रुकना। कहना है

कि अभी ठहरो, पहले इस यात्रा को हम पूरा कर ही लें। इसे हम जान लें कि यह अधर्म का आकर्षण क्या है? तुम कहते हो कि झूठ बुरा है, हम भी देख लें कि झूठ बुरा है या नहीं। और तुम कहते हो धन बुरा है तो हम भी देख लें कि धन बुरा है। **निश्चित ही, एक जगह आती है, जहाँ धन मिट्टी हो जाता है। लेकिन उसके लिए कभी यह जगह नहीं आती है, जो धन की यात्रा में गया ही नहीं।**

जो पहले से रोक के अपने को संयम साधके खड़ा हो गया है, उस संयमी आदमी की बड़ी मुश्किल है। संयमी आदमी से ज्यादा फजीता किसी की भी नहीं है। क्योंकि उसका मन होता है उस तरफ जाने का और विचार होते हैं इस तरफ आने को। वह ऐसा आदमी है—समझें, ऐसी बैलगाड़ी कि जिसमें दोनों तरफ बैल जोत दिये गये हों और बैलगाड़ी को दोनों तरफ खींच रहे हों। वो बैलगाड़ी कभी कहीं जा नहीं पाती। कभी दो फीट इधर जाती है, जरा बैल ताकतवर हो गये, दूसरे बैल सुस्ताने लगे, कभी दो फीट इधर आती है, वह बैल थक गये और इन बैलों ने खींच लिया। जिंदगी भर बस, बैलगाड़ी इसी तरह हमारी होती रहती है। **इधर थोड़ा अधर्म करते हैं फिर मन डर जाता है, थोड़ा धर्म** कर लेते हैं। बस, ऐसा चलता जाता है। **धर्म और अधर्म के बीच हम कभी भी एक यात्रा पर नहीं निकले हैं।** मेरी अपनी समझ यह है कि **अधर्म का अनुभव ही धर्म में ले जाता है। अशांति का अनुभव शांति में ले जाता है। हिंसा का अनुभव अहिंसा में ले जाता है और भौतिकता का अनुभव अध्यात्म में ले जाता है। भोग का अनुभव योग का आधार बनता है।** यह बातें उल्टी दिखाई पड़ती हैं यह उल्टी नहीं हैं, यह जिंदगी का नियम है। इसलिए मैं इस प्रश्न के संदर्भ में जीवन का दूसरा नियम भी आपसे कह दूं। जीवन के गणित का दूसरा नियम यह है, **जो भी करना हो पूरा करना। अधूरा करने के अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है। अधूरा करने के अतिरिक्त और कोई बुराई नहीं है। बुराई भी करनी हो तो पूरी करना।**

एक और मजे की बात इससे निकलती है, वह यह कि, बुराई आप पूरी कर सकते हैं, भलाई आप कभी पूरी नहीं कर सकते। इसलिए बुराई से से मुक्त हो जायेंगे, भलाई से कभी मुक्त नहीं हो सकते। यह कभी ख्याल न आया होगा कि, बुराई बड़ी छोटी चीज, उसका अंत बहुत जल्दी आ जाता है। लेकिन भलाई बहुत अनन्त है, उसका अंत आता ही नही। इसलिए संसार से कोई ऊपर उठ सकता है, भौतिकवाद से ऊपर उठ सकता है, लेकिन धर्म और अध्यात्म के ऊपर कभी भी नहीं उठ सकता है। उसमें सिर्फ प्रवेश होता है

फिर अंत आता ही नहीं। परमात्मा में सिर्फ प्रवेश होता है, अंत कभी नहीं आता है। ऐसा कभी नहीं होता कि एक आदमी कह दे कि अब ठीक है, अब परमात्मा को भी पूरा जान लिया, अब ! अब आगे ! नहीं, ऐसा कभी नहीं होता।

असल में बुराई वह है, जिसका अन्त आ जाता है, जिसकी बड़ी छोटी-सी सीमा है। इसे थोड़ा सोचें, अगर आप एक आदमी से दुश्मनी करें और पूरी दुश्मनी करें, तो ज्यादा से ज्यादा अंत क्या हो सकता है कि उस आदमी को मार डालें और क्या होगा ! दुश्मनी अगर पूरी ही करे कोई मुझसे, वह मुझे मार डाले, यही कर सकता है न ? आखिर और क्या कर सकता है ! लेकिन अगर कोई मुझसे मित्रता करे तो बड़ी लंबी यात्रा है। इसका अंत कभी भी नहीं आयगा। वह कुछ भी करता चला जाय, लेकिन अंतिम मित्रता का क्या मतलब हो सकता है ? मित्रता का कोई अंतिम मतलब नहीं हो सकता। कितना ही करो फिर भी करने को बाकी रह जायगा। कितना ही करो, फिर भी शेष, फिर भी शेष होगा। शत्रुता का अंत आ जाता है, मित्रता का कोई अंत नहीं है। अशांत आप हो जायँ तो कितनी देर अशांत रह सकते हैं ? अगर एक आदमी को हम कहें कि तुम अशांत रहो, कितनी देर अशांत रह सकते हो, तो आप पायेंगे, घड़ी आधा घड़ी में शिथिल हो जायगा। करेगा क्या ! क्योंकि अशांति इतनी शक्ति व्यय करवाती है कि आप बहुत देर तक अशांत नहीं रह सकते हैं। न बहुत देर क्रोधित रह सकते हैं। लेकिन शांत होने का कोई अंत है ? आप शांत कितने ही रह सकते हैं। उसका कोई अंत नही है, वह अंतहीन है। अशांति का अंत आ जायगा। शांति का कोई अंत नहीं आयगा; शांत कितना ही रह सकते हैं। अशांत कितना ही नहीं रह सकते, क्योंकि अशांति एक तनाव है, तनाव में श्रम है, श्रम में शक्ति का व्यय है। शांति तनाव नहीं है, विश्राम है। शांति में कोई शक्ति का व्यय नहीं है, कोई तनाव नहीं है, कितना ही शांत रह सकते हैं।

प्रेम का कोई अन्त नहीं है, घृणा का अंत है। लेकिन हम घृणा के अन्त पर ही नहीं पहुंचे, जिसका अंत है। हम अशांति के अंत पर ही नहीं पहुंचे, जिसकी सीमा है। तो हम शांति की खोज में नहीं निकल पायेंगे। तो मैं आपसे नहीं कहता हूं कि शांति की खोज पर निकल जाइये। मैं तो कहता हूं, ठीक से अशांत ही हो जाइये। मंद-मंद मत चलिये, धीमे-धीमे मत चलिये, ठीक से हो जाइये। अशांति ही आपको धक्का दे देगी। कोई गुरू धक्का नहीं दे सकता। अशांति ही आपको धक्का दे देगी, वह अंतिम धक्का जो शांति की यात्रा पर ले जाता है। ध्यान तो शांति ला सकता है, लेकिन शांति की तरफ वे आते हैं, जो अशांत हो गये हैं। अगर आप अशांत हो गये

हैं, तो अब कोई उपाय न रहेगा, आपको ध्यान की तरफ जाना ही पड़ेगा। किसी भी द्वार से आप ध्यान की यात्रा करेंगे ही। बचाव नहीं है कोई।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि ईश्वर को खोया नहीं, सिर्फ भूल गये हैं। और आप कहते हैं, ईश्वर से ही हम आये हैं और ईश्वर में ही चले जायेंगे और फिर यह भी कहते हैं कि ईश्वर और हम एक हैं। तो यह बातें तो बड़ी उल्टी हैं। अगर हम एक ही हैं तो **ईश्वर से आना कैसा और जाना कैसा** ! तो यह बातें बड़ी उल्टी मालूम पड़ती हैं।

सागर में लहर उठती है और गिरती है। उठती है तब भी सागर से दूर नहीं होती है और गिरती है तब भी दूर नहीं होती है। फिर भी उठती है और गिरती है। सागर की लहर सागर के साथ एक ही है। सागर से जरा भी अलग नहीं है। **सागर की लहर को आप सागर से अलग करना भी चाहें तो नहीं कर सकेंगे।** यह बड़े मजे की बात है। **सागर तो बिना लहर के हो सकता है, लेकिन लहर बिना सागर के नहीं हो सकती।** सागर को कोई अड़चन नहीं है कि लहर के बिना न हो सके, लहर के बिना हो सकता है। लेकिन लहर ! लहर सागर के बिना नहीं हो सकती। इसमें तीन बातें ख्याल रखने जैसी हैं। पहली बात **लहर सागर के बिना नहीं हो सकती इसलिए सागर मूल है और लहर मूल नहीं है। लहर आती है, जाती है, सागर है। सागर न आता न जाता। लहर कभी जन्मती है, कभी मरती है। सागर न जन्मता और न मरता। सागर है। सागर के लिए हम अतीत या भविष्य का प्रयोग नहीं कर सकते। सागर के लिये सदा वर्तमान का, 'प्रजेंट' का ही उपयोग करना पड़ेगा।** हम ऐसा नहीं कह सकते हैं कि सागर था, हम ऐसा नहीं कह सकते कि सागर होगा, हम ऐसा ही कह सकते हैं कि सागर है। क्योंकि 'था' उसको कह सकते हैं, जो फिर नहीं हो जाय। 'होगा' उसको कह सकते हैं, जो अभी न हो। हाँ, **लहर को कह सकते हैं, 'थी', 'है', 'होगी', सागर को नहीं कह सकते हैं। सागर सदा है। सागर सदा वर्तमान है। ध्यान रहे, अतीत, भविष्य और वर्तमान में, वर्तमान परमात्मा का काल है। परमात्मा हमेशा वर्तमान है। ईश्वर था ऐसा कहने का कोई भी अर्थ नहीं होता, ईश्वर है।** सागर से समझने की थोड़ी कोशिश करें, सागर से लहर एक है, लेकिन फिर भी उठती है और गिरती है। तो परमात्मा से हम एक हैं और आते हैं, जाते हैं। कठिनाई क्या है ? अड़चन क्या है ? क्यों नहीं आ सकते और जा सकते ? क्यों नहीं उठ सकते हैं और गिर सकते हैं ? लेकिन आने-जाने से हमें ऐसा ख्याल आता है कि आने-जाने का मतलब है, अलग हो गये। लहर जब उठती है तब अलग है सागर से ? और लहर नहीं उठती

है तब एक है ? नहीं, जब लहर उठती है तब भी एक है, तब भी अलग नहीं है। हम जब आते हैं तब उसका मतलब इतना ही है कि हम लहर की भांति उठते हैं---चेतना के सागर में। चेतना का सागर वह जो 'कॉन्ससनेस' का सागर है, उसमें हम उठते हैं और गिरते हैं। अलग लेकिन हम नहीं होते हैं। लेकिन, उठने और गिरने में अलग होने का भ्रम पैदा हो सकता है। अगर लहर को भी चेतना हो तो लहर उठते वक्त सोच सकती है 'मैं हूं' क्योंकि लहर अपने भीतर तो देख न सकेगी, अपने बाहर देखेगी और लहरें दिखाई पड़ेंगी, सागर तो दिखाई न पड़ेगा। यह भी ध्यान रखें, अगर कोई लहर देख सकेगी तो उसे सागर दिखाई कभी नहीं पड़ेगा, लहरें दिखाई पड़ेंगी, क्योंकि सागर की छाती पर लहरें ही होती हैं, सागर तो नहीं होता। और जब एक लहर उठेगी तो आस-पास लहरें उठेंगी, क्योंकि कोई लहर अकेली नहीं उठ सकती। यह भी ध्यान में रख लेना कि कोई लहर अकेली नहीं उठ सकती। मैं अकेला पैदा नहीं हो सकता हूं और न आप अकेले पैदा हो सकते हैं। करोड़ों-करोड़ों लहर के बीच में हमारा होना है। आपके पिता थे इसलिए आप हैं। उनके पिता थे इसलिए वो थे। उनके भी पिता थे, उनके भी पिता थे..., लंबी कहानी है, जिसमें अरबों-खरबों लहरों ने धक्के देकर आपकी लहर को उठाया है।

तो आप कभी ऐसा मत सोच लेना कि अकेले आप हो सकते हैं। आपके होने का कोई अर्थ ही नहीं है। तो, जब एक लहर पैदा होती है तो लहर अकेली कभी पैदा नहीं होती, करोड़ों-करोड़ों लहर के जाल में पैदा होती है। उसे चारों तरफ लहरें दिखाई पड़ती हैं, सागर दिखाई नहीं पड़ता है, अगर लहर देख सके तो उसे सागर कभी दिखाई नहीं पड़ता है, उसे लहरें दिखाई पड़ेंगी। हमको भी परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता है, प्राणी दिखाई पड़ते हैं। वह लहरें हैं, जो हमारे चारों तरफ हैं—मनुष्यों की; पौधों की; पक्षियों की; चारों तरफ लहरें दिखाई पड़ती हैं। परमात्मा हमें भी दिखाई नहीं पड़ता। अब यहां हम इतने लोग बैठे हुए हैं, इतनी लहरें हैं और हम चारों तरफ देखेंगे तो परमात्मा कहां दिखाई पड़ेगा ? लहरें ही लहरें दिखाई पड़ेंगी। कई लहरें उठती हुई होंगी— बच्चे होंगे, जवान होंगे। कुछ लहरें गिरती हुई होंगो—बूढ़े होंगे, विदा हो रहे होंगे। कुछ लहरें उठ चुकी होंगी, कुछ जाने के करीब आ गई होंगी, कुछ उठ रही होंगी। हमारे चारों तरफ हम देखेंगे तो परमात्मा कहां दिखाई पड़ेगा ? लहरें दिखाई पड़ेंगी। सघन लहरों का जाल है। अगर कोई लहर होश से भर जाय, तो पहली तो बात यही है कि उसे सागर दिखाई नहीं पड़ेगा। हमें परमात्मा दिखाई नहीं

पड़ता है। दूसरी बात यह है कि उसे दूसरी लहरें दिखाई पड़ेंगी, जिनसे वह भिन्न मालूम पड़ेगी कि मैं अलग हूं। स्वाभाविक है—एक लहर उठी है सागर पर—वह देख रही है कि पड़ोस की लहर तो गिर रही है और मैं तो अभी उठ रही हूं, तो हम दोनों एक कैसे हो सकते हैं! एक आदमी पड़ोस में मेरे मर गया है, तो मैं उससे एक कैसे हो सकता हूं ? अगर एक होता तो मैं भी मर जाता और अगर एक होता तो उसको भी जिन्दा रहना चाहिये था। हम एक नहीं हो सकते, क्योंकि पड़ोस का तो मर गया और मैं जिन्दा हूं। तो हम एक नहीं हो सकते हैं। एक लहर गिर रही है, एक छोटी है, एक बड़ी है, एक बूढ़ी है—तो लहरों को दिखाई पड़ता है, लहरें अलग-अलग हैं। मैं अलग हूं। चारों तरफ की लहरें अलग हैं। ऐसा ही हमें भी दिखाई पड़ता है कि मैं अलग हूं। चारों तरफ के जीवन-प्राण के स्रोत, मूल स्रोत से टूटे हुए टुकड़े अलग-अलग हैं। और बाहर देखने को बहुत कुछ है, लहर भीतर क्यों! अगर लहर भीतर देखे तो शायद सागर मिल जाय, क्योंकि भीतर उतरने पर कोई लहरें तो नहीं मिलेंगी। अगर एक लहर अपने भीतर उतर सके तो सागर मिलेगा उसे, लहरें नहीं मिलेंगी फिर, क्योंकि नीचे सागर है। इसलिए जब कोई अपने भीतर उतरता है, तो परमात्मा का अनुभव कर पाता है। अपने बाहर तो लहरें ही लहरें दिखाई पड़ती रहती हैं।

ध्यान जो है, वह भीतर उतरने की कला है, जिसमें हम बाहर की लहरों की फिक्र छोड़ देते हैं और इसी लहर में उतर जाते हैं, 'जो मैं हूं'। और जैसे-जैसे हम भीतर उतरते हैं, वैसे-वैसे पता चलता है कि लहर नहीं है, सागर है। और जितने भीतर जाते हैं, पता चलता है, लहर थी ही नहीं, सागर ही था, सागर ही है, सागर ही होगा। लहर है ही नहीं। जो व्यक्ति अपने भीतर जाता है, उसे सागर का पता चल जाता है, परमात्मा का पता चल जाता है।

उन मित्रों ने पूछा है— लेकिन हम जाने ही क्यों ? अगर उसी से आये हैं और उसी में लौट जाना है, तो ठीक है, आ गये और लौट जायेंगे। अब हम इस झंझट में क्यों पड़ें कि जानें उसे हम ?

मत पड़ें। कोई नहीं कहने आता है कि आप पड़ें। लेकिन, आप पड़े हुए हैं। असल में जीवित होने के साथ ही, जीवन क्या है—वह प्रश्न भी हमारे भीतर उठ आता है। जीवित होने का यह हिस्सा है, कि हम यह भी जानना चाहते हैं कि जीवन क्या है ? कोई नहीं कहता है कि आप जानने जायँ। लेकिन ऐसा दुनिया में एक आदमी नहीं मिलेगा, जो जानने को आतुर नहीं है, अगर ऐसा आदमी मिल जाय जो जानने को आतुर नहीं है, तो बड़ा चमत्कार

है— मिल नहीं सकता ऐसा आदमी। छोटे से बच्चे भी जैसे ही बोलना शुरू करते हैं कि जानने की यात्रा शुरू कर देते हैं। वे कहते हैं— यह वृक्ष कहां से आया ? प्रश्न उनके उठने शुरू हो जाते हैं, यह पृथ्वी किसने बनायी ? यह चाँद को रोज रात कौन जला देता है ? यह सूरज सुबह निकल आता है, रात कहां चली जाती है? छोटे बच्चे भी पूछने लगते हैं। जिंदगी पूछती है— जानना चाहती है यह, क्योंकि जानलें हम पूरी तरह, तो ही पूरी तरह जी सकते हैं। वह जीने की खोज का हिस्सा है कि हम जान लें ताकि हम पूरे जी सकें। अगर मुझे पता चल जाय कि **मैं लहर नहीं हूं, सागर हूं,** तो मेरे जीने का मतलब ही—अर्थ ही बदल जायगा, क्योंकि तब मुझे कोई डर न रहेगा मिटने का। क्योंकि सागर कभी मिटता नहीं है। तब मौत से मुझे कोई डरवा न सकेगा। क्योंकि मैं हसूंगा, कहूंगा कि ठीक है, मिटा दो लहर को, क्योंकि मैं लहर हूं ही नहीं। तुम जिसे मिटाओगे, वह मैं नहीं हूं और तुम मिटा भी न पाओगे और मैं रहूंगा वहीं के वहीं—जहां मैं था। अगर मुझे पता चल जाय कि मैं सागर हूं और लहर नहीं तो लहर की चिंताएं विदा हो जायँगी। लहर बड़ी चिंता में पड़ी है। सबसे बड़ी चिंता तो यह है कि वह विदा हो जायगी, समाप्त हो जायगी, नष्ट हो जायगी। हर आदमी मरने से डरा हुआ है। हम डरे हुए हैं कि मर न जायँ। यह मरने का डर इसलिए है कि हमें पता नहीं है कि नीचे कुछ है, जो मर ही नहीं सकता। उसका पता चल जाय तो यह भय विदा हो जाय।

सिकन्दर हिन्दुस्तान से लौटता था, तो एक फकीर को पकड़कर ले जाना चाहता था। उसके मित्रों ने कहा था उससे कि जब वह हिन्दुस्तान से लौटे तब एक संन्यासी को ले आये। तो उसने खबर की गांव में कि कोई संन्यासी हो तो मैं आऊँ। लेकिन गांव के लोगों ने कहा—"बहुत मुश्किल है, संन्यासी तो है, लेकिन संन्यासी को ले जाना बहुत मुश्किल है।" सिकंदर ने कहा—"तुम इसकी फिक्र मत करो। हमारे पास नंगी तलवारें हैं, हम किसी को भी ले जा सकते हैं।" गाँव के लोगों ने कहा—"फिर आप संन्यासियों को जानते नहीं हैं, क्योंकि नंगी तलवार देखके संन्यासी हसेंगे और कुछ भी न होगा।" सिकंदर ने कहा—"तुम फिक्र ही मत करो, तुम मुझे बता दो वह कहां है ?" उसने दो सिपाही नंगी तलवारें लेके संन्यासी के पास भेजे। वे सिपाही गये और उन्होंने संन्यासी से कहा कि महान सिकंदर की आज्ञा है कि आप हमारे साथ चलें। वह संन्यासी बहुत हँसने लगा। उसने कहा—"जो खुद ही को महान कहता हो, उससे ज्यादा नासमझ और कौन हो सकता है ?

उससे ज्यादा पागल और कौन हो सकता है! कौन कहता है अपने को महान ?" वे सिपाही एक क्षण तो डर गये, क्योंकि उनके महान सिकंदर को कोई ऐसा कहेगा—एक नंगा फकीर, नदी के किनारे खड़ा हुआ एक बूढ़ा आदमी! उन सिपाहियों ने कहा कि तुम क्या कह रहे हो। गरदन अलग कर देंगे अगर तुमने इस तरह की बात की। उस फकीर ने कहा—"गरदन हम बहुत पहले अलग कर चुके हैं, अब अलग करने को कुछ बचा नहीं है। हमने वो काम दूसरों के लिए छोड़ा ही नहीं। तुम अपने सिकंदर को बुला लाओ। हम तुम्हारे मालिक से ही बात कर लें।" वे सिपाही सिकंदर के पास गये और कहा कि बहुत अजीब आदमी है, अपना वश उस पर न चलेगा, क्योंकि ज्यादा से ज्यादा हम उसे मार सकते हैं, बस, इतना हमारा वश है और वह आदमी मरने से जरा भी नहीं डरता। सिकंदर ने कहा—"फिर भी मैं चलना चाहूंगा।" सिकंदर गया और उस आदमी के सामने तलवार उसकी गरदन पर रख दी और कहा कि चलते हो कि गरदन अलग कर दूं ?" उस फकीर ने कहा—"कर दो, मजा आयगा, तुम भी गरदन को गिरते देखोगे कि गिर गयी और मैं भी देखूंगा कि गिरी।" सिकंदर ने कहा—"तुम भी देखोगे!" उस फकीर ने कहा—"मैं भी देखूंगा, क्योंकि यह गरदन मैं नहीं हूं। यह जबसे जान लिया है, तबसे बात ही खतम हो गयी, अब मुझे कोई सिकंदर डरा नहीं सकता। तलवार भीतर रखलें। तलवार म्यान के भीतर रखलें, बेकार हाथ थक जायगा।" और सिकंदर के लिये पहला मौका था, यह कि किसी के डर में तलवार भीतर रखली उसने। क्योंकि आदमी बेकार है, इसके सामने तलवार निकालना खुद ही मूढ़ता मालूम पड़ने लगी। फकीर ने कहा—"तू गरदन काट ही दे, जरा मजा आ जायगा, गिर जायगी तो बहुत अच्छा होगा।"

लहर अपने को जान ले कि सागर है, तो सब बदल जायगा—सारी जिंदगी बदल जायगी। जिंदगी के रहने का मजा ही और हो जायगा, क्योंकि **तब हम लहर की तरह ही नहीं, सागर की तरह रहेंगे। तब हम आदमी की तरह नहीं, परमात्मा की तरह रहेंगे।** और परमात्मा की तरह रहने का मजा है, तब हम पूरे ऐश्वर्य में रहेंगे। ऐश्वर्य का मतलब ? ऐश्वर्य का मतलब बड़ा मकान नहीं होता। ऐश्वर्य का मतलब! मकान कितना ही बड़ा हो फिर भी छोटा ही होगा। और धन कितना ही ज्यादा हो फिर भी थोड़ा ही होगा। असल में जो गिना जा सकेगा वह थोड़ा ही होगा। ऐश्वर्य का मतलब है कि सारा जगत जिसका मकान हो और सारे चांद-तारे जिसके घर पर रोशनी देने लगें और हवाएँ जिसकी बगिया की सेवा करने लगें, जो सारे जीवन का मालिक हो जाये। मालिक इसलिए कि उसका मालिक के साथ

ऐश्वर्य का अनुभव हो गया'। **ख्याल है आपको ? ईश्वर शब्द ऐश्वर्य से बना हुआ है। ईश्वर शब्द और ऐश्वर्य एक ही सत्य के रूपांतरण है। ईश्वर का मतलब है मालिक, सब ऐश्वर्य जिसका है। सारा जगत जिसका है। संन्यासी वह नहीं है, जिसने एक घर छोड़ दिया, संन्यासी वह है, जिसके सारे घर अपने हो गये।** संन्यासी वह नहीं है कि जिसने एक बेटा, बेटी, एक मां-बाप छोड़ दिया, जिसका सब परिवार अपना हो गया। 'सब' यह जो अनुभव है ऐश्वर्य का—यह सबको अपना ही हो जाने का, यह कैसे होगा? यह होगा, लहर भीतर उतरे और जान ले। बच नहीं सकते हैं परमात्मा की खोज से, खोज करनी ही पड़ेगी। गलत भी कर सकते हैं, ठीक भी कर सकते हैं, वह दूसरी बात है। एक आदमी धन खोज के सोचता है कि ऐश्वर्य को पा लेगा। वह गलत खोज है, क्योंकि धन कितना ही खोज लो—कितना ही खोज लो, फिर भी गिना जा सकेगा। और जो गिना जा सकेगा, वह कभी असीम नहीं हो सकता। और धन कितना ही इकट्ठा कर लो, वह छीना जा सकेगा। क्योंकि जो छीना गया है, वह छीना जा सकता है। आखिर मैं भी छीन के ही इकट्ठा करूंगा। तो जो मैंने छीना है, वह मुझसे छीना जा सकता है, छिनेगा ही। धन खोजकर भी आदमी ईश्वर को ही खोज रहा है। मैं यह कह रहा हूं—गलत ढंग से खोज रहा है। धन खोजकर भी वह ऐश्वर्य की खोज में गया है, लेकिन गलत चला गया। लहर भीतर की तरफ नहीं गयी, बाहर की लहरों पर कब्जा करने निकल गयी है कि मैं कब्जा करूं उन पर। लहर कहती है कि मैं राष्ट्रपति हो जाऊँगी, चालीस करोड़ लहरों पर कब्जा करलूं, तो लहर पागल हो गयी। सभी राष्ट्रपति पागल हो जाते हैं। वह पागलपन की दौड़ है। और अगर पागलों को खोजना है, तो पागलखानों में नहीं जाना चाहिये, राजधानियों में चला जाना चाहिये। वहां वो सब इकट्ठे मिल जाते हैं। (हास्य)

लेकिन, वे भी ईश्वर की खोज में लगे हैं, गलती से राजधानी पहुंच गये हैं। वे गलत रास्ते पर—समझ रहे हैं—ईश्वर को खोज लेंगे। जो पद को खोज रहा है, वह भी ईश्वर को ही खोज रहा है। क्योंकि ईश्वर परम पद है, उसके आगे फिर कोई पद नहीं है। लेकिन, गलत ढंग से खोज रहा है। वह जो प्रेम में, पत्नी में, बेटे में खोज रहा है, वह भी गलत ढंग से खोज रहा है, क्योंकि वह इतने छोटे में खोज रहा है कि मिल नहीं सकता। इतनी बड़ी आकांक्षा और इतनी छोटी खोज! आकांक्षा ता यह है कि सारे जगत की उपलब्धि हो जाय, सारे विश्व की उपलब्धि हो जाय, इतनी बड़ी आकांक्षा है, तो बिना परमात्मा को खोजे वह पूरी नहीं होगी। दोनों रास्ते अलग हैं।

अगर लहर दूसरी लहरों पर कब्जा करने निकल जाय, तो यह एक रास्ता है, जो गलत रास्ता है। और अगर लहर अपने भीतर उतर जाय और पता पा ले कि कौन है नीचे, तो सारी लहरों पर कब्जा मिल ही गया, क्योंकि सारी लहरें अलग न रहीं। अब कब्जा करने की कोई जरूरत न रही, वह हम ही हैं।

जैसे ही लहर नीचे उतरती है, सागर मिल जाता है और इसे पता चल जाता है कि सब लहरें सागर की ही हैं। अब झंझट न रहा। जब सागर ही हम हैं, तब और दूसरी लहर पर कब्जा करने की क्या बात है? अब सबके भीतर हम ही हो गये। इसलिए यह तो पूछें ही मत कि हम इस झंझट में क्यों पड़ें? कोई नहीं कहता कि पड़ें। लेकिन आप पड़े ही हुए हैं, उपाय नहीं है झंझट से गुजरेंगे तो बाहर हो भी सकते हैं। जब आप यह पूछते हैं, हम झंझट में क्यों पड़ें? तो ऐसा लगता है, जैसे पड़ने का निर्णय आप कर रहे हैं अब। नहीं, आप पड़े ही हुए हैं। जीवन होना ही झंझट में होना है। यह कोई मेरी बात सुनके आप ईश्वर की खोज पर नहीं चले गये हैं, ईश्वर की खोज पर चले गये होंगे इसलिये मेरी बात सुनने चले आये हैं। यह कोई मेरी बातें सुनके आपके मन में प्रश्न पैदा नहीं हो जायेंगे, प्रश्न होंगे आपके मन में इसलिए मेरी बातें सुनने आये हैं। खोज है जारी, चल रही है। खोज पूरी हो सकती है, अगर हम भीतर की तरफ जायें तो हम पा लेंगे और अगर हम बाहर की तरफ खोजते रहें तो हम और खो देंगे। पाना तो बहुत दूर है, और खोदेंगे। कुछ लोग हैं, जो भिखारी ही पैदा होते हैं और भिखारी ही मर जाते हैं। धन हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। यश हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। पद हो, प्रतिष्ठा हो, इससे कोई फर्क नहीं है, क्योंकि यह सारी की सारी बाहर की खोज है, जिनकी सीमायें हैं और असीम की आकांक्षा है मन में। और सीमित से तृप्ति कभी भी नहीं होती। कोई किसी प्रेमी से तृप्त नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रेम की आखिरी खोज प्रेमी के लिए है। **जब तक परमात्मा ही प्रेमी की तरह न मिल जाय, तब तक तृप्ति का कोई उपाय नहीं है।** खोज तो चल ही रही है। उन्होंने यह भी पूछा है कि यह खोज है ही क्यों? इसकी जरूरत ही क्या है? यह तो कभी परमात्मा मिल जाय तो उससे पूछ लेना, क्योंकि इसके लिए सिवाय उसके और कोई उत्तर नहीं दे सकता। यह है ही क्यों? यह तो परमात्मा मिले तो उससे पूछ लेना। हालांकि, अब तक जितने लोग मिले हैं, पूछ नहीं पाये, क्योंकि मिलते ही पूछना भूल जाते हैं। और जिन मित्र ने पूछा है, खूब पक्का लिखके रखना, भूल न जाय। लेकिन है खतरा। वही अब तक कोई पूछ नहीं पाया है, क्योंकि जैसे ही वह मिल जाता है, सब मिल जाता है, पूछने का मन ही चला जाता है।

मैंने सुना है, एक समुद्र के किनारे एक मेला भरा हुआ था। बहुत लोग गये थे, दो नमक के पुतले भी गये थे। लोगों में विवाद होने लगा कि सागर की गहराई कितनी है, तो नमक के पुतले गुस्से में आ गये—तेजी में आ गये। उन्होंने कहा कि हम अभी कूद कर पता लगा लाते हैं। एक पुतला कूद गया। फिर लोग किनारे पर खड़े देखते रहे। वह नहीं लौटा, नहीं लौटा तो बहुत परेशानी हुई। दूसरे पुतले ने कहा,मैं अभी उसका पता लगाके आता हूं।" वह फिर कूद गया, वह भी नहीं लौटा, नहीं लौटा, नहीं लौटा, फिर मेला बिछड़ गया। अब हर साल उसी दिन पर मेला लगता है— उस समुद्र के तट पर। इसी प्रतीक्षा में कि वह नमक के पुतले शायद अब तक लौट आयें। वो लौटते ही नहीं, क्योंकि सागर में नमक का पुतला जायगा तो घुलेगा, बह जायगा, मिट जायगा, खो जायगा। लौट के खबर देने कौन आयेगा ? और भीतर जितना जायगा, उतना मिटता चला जायगा। ठीक गहराई तक पहुंचते-पहुंचते बचेगा कौन जो पूछे कि गहरे कितने हो ? कितनी है गहराई यह पूछने को बचेगा कौन ? यह सब लहर के सुख हैं, जो पूछ रही हैं। प्रश्न सब लहर के हैं, उत्तर सब सागर में हैं। लेकिन प्रश्न लहरें पूछती हैं, उत्तर सब सागर के पास हैं , और सब लहर सागर में उतर के जाती हैं, तो प्रश्न खो जाते हैं—पूछने को कुछ नहीं रह जाता। यह जो आप पूछते हैं, यह जीवन क्यों है ? हम बने क्यों है ? यह है ही क्यों ? यह जगत क्यों है ? यह प्रकृति क्यों है ? यह होना क्यों है ? यह आप पूछते रहें, पूछते रहें, पूछते रहें, कोई उत्तर नहीं है। और कोई उत्तर देता हो तो बेईमान है। उत्तर है ही नहीं । अब तक दिया नहीं गया, दिया जा सकता नहीं। हां, एक कोई दे सकता है उत्तर, जो नीचे है, सबके भीतर फैला है, जिसने सब देखा है— आना और जाना और होना, अनंत लीला देखी है—वह दे सकता है उत्तर। तो वहां पहुंच जायें और इससे पूछ लें। लेकिन अभी तक कोई पूछ नहीं पाया। कोई जाता है मिट जाता है। यानी ऐसा कुछ है कि **जब हम उसके सामने खड़े होते हैं, तो हम मिट जाते हैं और तब तक हम होते हैं, जब तक वह सामने नहीं होता है**। मुलाकात सीधी-सीधी नहीं हो पाती है कि सामने खड़े हो जायँ और पूछ लें कि क्यों है सब ? सच यह है कि यह प्रश्न जो है, 'एब्सर्ड' है— यह प्रश्न जो है, गलत ही है। गलत क्यों ? गलत इसलिए है कि हम जीवन के अन्तिम क्यों का उत्तर नहीं पा सकते हैं। वह जो 'अल्टी–मेट व्हाई', जो आखिरी क्यों है, उसका उत्तर हम नहीं पा सकते हैं। क्यों नहीं पा सकते हैं ? इसलिये नहीं पा सकते हैं कि कोई भी उत्तर मिले, हम फिर उससे क्यों पूछ सकते हैं। कोई भी उत्तर मिले, 'क्यों' पूछने में क्या

तकलीफ होगी ? कोई कहता है, ईश्वर ने जगत को बनाया। और हम पूछते हैं कि ईश्वर को किसने बनाया ? अब कोई कहता है कि अनाम के आदमी ने ईश्वर को बनाया। हम पूछते हैं, अनाम के आदमी को किसने बनाया ? अब यह पूछना चलता रहे, चलता रहे, चलता रहे, इसका अन्त कैसे आ सकता है? इसका अन्त नहीं आ सकता है, **क्योंकि जो प्रश्न है, वह ऐसा है, जो हर उत्तर पर लागू हो जायगा**। कैसा भी उत्तर दिया जाय, फिर भी पूछा जा सकता है 'क्यों' ? इसलिये जो बहुत बुद्धिमान हैं, वे 'क्यों' के सम्बन्ध में चुप रह गये हैं। क्योंकि, उनका कहना है कि 'क्यों' की बात ही व्यर्थ है। इसमें पूछा ही नहीं जा सकता है। यह अन्तहीन हो जायगा। इसका कोई अर्थ नहीं है।

बच्चों की कहानी पढ़ी होगी। छोटे बच्चे 'क्यों-क्यों' पूछते ही चले जाते हैं। वह पूछते हैं और आगे। अगर कोई छोटे बच्चे को कहानी सुनाये और कहे कि राजा-रानी का विवाह हो गया और फिर वे दोनों आनन्द से रहने लगे। हालांकि, बिलकुल झूठी बात है, विवाह के बाद कोई आनन्द से रहता नहीं। **(हास्य)** लेकिन, सब कहानियां यह कहती हैं। और इसके आगे कुछ भी नहीं बतातीं, क्योंकि इसके आगे बताना खतरनाक होगा। आदमी को खुद ही पता चल जाता है, आगे क्या होता है। इसलिये सब कहानियाँ यहां खतम हो जाती हैं कि उनका विवाह हुआ, फिर वे दोनों आनन्द से रहने लगे। आगे बात ही नहीं। फिल्म भी यहां खतम होती है। कहानी, उपन्यास सब यहां खतम हो जाते हैं, क्योंकि इसके आगे बहुत खतरनाक दुनिया शुरू होती है, **(हास्य-तालियां)** जिसको कि बताना झंझट हो जाता है। लेकिन बच्चे फिर भी पूछते हैं कि फिर क्या हुआ ? फिर क्या हुआ ? बच्चे हैं कि पूछते ही चले जाते हैं। तो मैं एक कहानी पढ़ रहा था बच्चों की, वह कहानी बहुत बढ़िया थी। वह आपने भी सुनी होगी। बच्चों ने तो बहुतों ने जानी है। तो एक बूढ़ी स्त्री है, वह अपने नाती-पोतों को कहानियां सुनाती और नाती-पोते उसका सिर खाये जाते हैं। वह पूछते हैं कि फिर ? फिर क्या हुआ ? वह बूढ़ी थक जाती है, थक जाती है, लेकिन वह पूछते हैं, फिर क्या हुआ ? फिर उस बूढ़ी ने एक कहानी ईजाद की। उसने कहा, "एक वृक्ष है सागर के किनारे और उस पर अनन्त पक्षी बैठे हुए हैं। एक पक्षी उड़ा फुर.. ।" उसके बेटों ने पूछा, फिर क्या हुआ ? उसने कहा—दूसरा पक्षी उड़ा फुर्...फिर क्या हुआ ? वह बुढ़िया उत्तर देती चली जाती है। फिर सब बेटे धीरे-धीरे थक जाते हैं। उसने कहा, बस यही होता रहा ! फिर क्या हुआ ? वह बुढ़िया कहती है, एक पक्षी फुर्...और अनंत पक्षी बैठे हुए हैं

उस वृक्ष पर। इसलिये अब थकेगी नहीं—खतम नहीं होगी, यह कहानी चलती रहेगी। फिर सब बेटे थक जाते हैं और सो जाते हैं। हम जो 'क्यों' पूछते हैं, वह अन्तहीन हो जायगा। उसका कोई अर्थ नहीं है।

हम पूछते हैं, आदमी क्यों हुआ ? हम बेईमानी भरा प्रश्न पूछ रहे हैं। कोई भी उत्तर देंगे, हम फिर पूछेंगे, वह क्यों हुआ ? हमें लगेगा, हम बहुत बुद्धिमानी का प्रश्न पूछ रहे हैं। बहुत से तथाकथित बुद्धिमान ऐसे प्रश्न पूछते भी रहे हैं। शास्त्र भरे हैं इस तरह के प्रश्नों से, लेकिन सब बच्चों के प्रश्न हैं— बुद्धिमानों के प्रश्न नहीं हैं। क्योंकि, बुद्धिमान एक बात समझ लेगा कि 'क्यों' का उत्तर संभव नहीं है। क्योंकि, 'क्यों' हर उत्तर पर लागू हो सकता है इसलिये पहले ही 'क्यों' का उत्तर क्यों देना ? क्योंकि इसका कोई मतलब ही नहीं है। आगे, आगे, आगे होता चला जायगा। मैं नहीं देता हूं। मैं यह कहता हूं, जीवन है। आना हुआ है, जाना होगा। क्यों है ? मुझे पता नहीं है। किसी को पता नहीं है। लेकिन अज्ञान को स्वीकार करने में भी बड़ी कठिनाई है। सभी पंडितों को यह ख्याल है कि उनको सभी पता होना चाहिये। सभी ज्ञानियों को यह भ्रम है कि उन्हें सर्वज्ञ होना चाहिये। वो परमात्मा के लिये जानने को कुछ बचना ही नहीं देना चाहते। वो पूरा खुद ही जान लेना चाहते हैं। लेकिन वे कितना ही जान लें, आखिरी 'क्यों' का उत्तर आज तक किसी शास्त्र में नहीं है। और न किसी बुद्ध ने दिया, न किसी महावीर ने दिया, न किसी कृष्ण ने, न किसी क्राईस्ट ने... । आज तक आखिरी 'क्यों' का उत्तर दिया ही नहीं गया। इसलिये नहीं कि वो लोग नहीं जानते थे, बल्कि इसलिये कि वह दिया ही नहीं जा सकता है। वह 'अल्टीमेट क्वश्चन' आखिरी, अन्तिम प्रश्न का अर्थ ही यह होता है कि उसका उत्तर नहीं है। और अगर आप उसे खोजने जायेंगे तो प्रश्न मिटेगा ओर साथ ही आप भी मिट जायेंगे।

अगर आप चरम प्रश्न की खोज में गये तो आप भी खो जायेंगे। जैसे नमक का पुतला सागर में खो गया। कबीर ने कहा है कि बहुत खोजता था, बहुत खोजता था, खोजते-खोजते फिर खुद ही खो गया। और जब खुद खो गया तब वह मिल गया, जिसकी खोज थी। और जब तक खोजता था, 'वह' न मिला, क्योंकि तब तक 'मैं' था। इन दोनों का मिलना नहीं होता। वह गली बहुत संकरी है। कबीर कहते हैं, बहुत संकरी है, उसमें दो नहीं समाते। उसमें जब तक हम समाये रहते हैं तब तक वह लापता रहता है और जब वह आ जाता है तब अचानक हम पाते हैं कि हम गये। क्योंकि लहर जब तक लहर की तरह अपने को जानती है, अपने को सागर की तरह नहीं

जान सकती। यह दोनों जानना एक साथ कैसे हो सकते हैं! कि एक लहर अपने को लहर तरह भी जाने और साथ ही अपने को सागर की तरह भी जान ले। जिस क्षण वह जानेगी कि मैं सागर हूं, उस क्षण जानेगी कि अब मैं लहर न रही। और जब तक वह जानती है, 'मैं लहर हूं', तब तक वह जानती है कि मैं लहर हूं और सागर नहीं हूं। इसलिए लहर की और सागर की कभी मुलाकात नहीं होती। लहर और सागर का मिलन होता है, मुलाकात नहीं होती। **लहर खो जाती है, सागर हो जाती है।** लेकिन मुलाकात नहीं होती है। क्योंकि मुलाकात होने के लिए लहर को अब भी होना जरूरी है। इसलिए आदमी और ईश्वर का अभी तक कोई 'डायलाग', कोई वार्ता, कोई बातचीत नहीं हुई। ऐसा आमने-सामने बैठकर कोई बात नहीं हुई। लेकिन, अगर कभी हो जाय! यह सब हो सकता है, जीवन इतना रहस्यपूर्ण है कि पता नहीं क्या हो जाय! कभी हो जाय तो कागज में ठीक से लिखके रखना, वह वक्त पर भूल न जाय प्रश्न। वह भूल सकता है। यह ध्यान में रहे कि हमारे अधिकतम प्रश्न जो जीवन के संबंध में उठते हैं, वह हमारे दुःख, हमारी बेचैनी, हमारी चिंता, हमारी परेशानी के प्रश्न हैं।

एक आदमी को सन्निपात हो गया है। उसे बुखार चढ़ा है। ज्वर की डिग्रियाँ बढ़ती चली गई हैं और थर्मामीटर अपनी आखरी सीमा बताने लगा है। और उस घर के लोगों से वह आदमी कहता है कि मेरी खाट उड़ रही है। पूरब उड़ रही है कि पश्चिम उड़ रही है, मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा है, मुझे बताओ! और घर के लोग कहते हैं, शांत हो जाओ, शांत पड़े रहो, थोड़ी देर में ठीक हो जाओगे। लेकिन वह आदमी कहता है, ठीक और गलत का सवाल नहीं है। अभी तो सवाल यही है कि मेरी खाट उड़ रही है, वह पूरब उड़ रही है या पश्चिम उड़ रही है? अब घर के लोग क्या करें? उसे उत्तर दें? और क्या कोई ठीक उत्तर दिया जा सकता है? अगर घर के लोग कहें, पूरब उड़ रही है, तो भी गलत है, क्योंकि खाट उड़ ही नहीं रही। अगर घर के लोग कहें, पश्चिम उड़ रही है, तो भी गलत है। और अगर घर के लोग कहें, उड़ ही नहीं रही तो वह सन्निपात वाला हँसता है। वह कहता है, पागल है! न उड़ रही होती तो मैं पूछता क्यों? उड़ रही है यह तो पक्का रहा, इसकी तो बात ही मत उठाओ। सवाल यह नहीं है कि उड़ रही है कि नहीं उड़ रही है, सवाल यह है कि पूरब उड़ रही है कि पश्चिम उड़ रही है। तो घर के लोग उसके सिर पर ठंडे पानी की पट्टी रखते हैं। डॉक्टर को लेने भागते हैं। क्योंकि घर के लोग उसके प्रश्न का उत्तर देने नहीं बैठ

जाते, वे कहते हैं कि उत्तर देने में खतरा हो सकता है। वह आदमी मरने के करीब है। वे भागते हैं। वे उसे कहते हैं, जरा ठहरो, बुखार उतरने दो, फिर बता देंगे। वे इस आशा में यह कहते हैं कि बुखार उतर जाने पर वह पूछेगा ही नहीं! और क्या आपको ख्याल है कि बुखार उतर जाने पर वह पूछेगा? बुखार उतर जाने पर घर के लोग ही पूछेंगे कि क्या ख्याल है? खाट पश्चिम उड़ रही है कि पूरब? तो वह हँसेगा। वह कहेगा पागल हो गये हो? खाट उड़ ही नहीं रही!

हमारे जो प्रश्न हैं, जिनको हम 'मेटाफिजीकल' कहते हैं, बडे दार्शनिक कहते हैं, बड़े गहरे प्रश्न कहते हैं, बहुत गहरे-वहरे नहीं हैं, हमारे चित्त की बेचैनी और अशांति से उठे हुए प्रश्न हैं। क्या आपको पता है, आपने कभी सुख की हालत में पूछा हो कि सुख क्यों है? कभी नहीं। एक आदमी ने नहीं पूछा आज तक। **जब कोई आदमी पूरे सुख की हालत में होता है तो वह यह नहीं पूछता कि सुख क्यों है? लेकिन जब दुःख की हालत में होता है तो वह पूछता है कि दुःख क्यों है? जब कोई आदमी स्वस्थ होता है तो कभी पूछता है कि स्वस्थ क्यों है? नहीं। लेकिन, जब बीमार होता है तो पूछता है कि बीमारी क्यों है?** जब कोई आदमी किसी को प्रेम करता है और प्रेम में जीता है, और प्रेम में होता है तो वह यह नहीं पूछता कि प्रेम क्यों है? लेकिन जब प्रेम टूट जाता है और चित्त दर्पण की तरह खंड-खंड होके बिखर जाता है, तब वह पूछता है कि प्रेम टूट क्यों जाता है? जब किसी माँ का बेटा जिन्दा होता है तो वह कभी नहीं पूछती कि बेटा जिंदा क्यों है? लेकिन जब वह मर जाता है तो वह छाती पीटती है और कहती है कि मेरा बेटा मर क्यों गया? कभी आपने सोचा कि यह क्यों हमेशा दुःख में ही उठता है। यह क्यों कभी सुख में नहीं उठता। **असल में जीवन हमारा इतने दुःख में है कि हम पूरे जीवन के सम्बन्ध में पूछते हैं कि जीवन क्यों है?**

यह प्रश्न जो है, 'मेटाफिजिकल' नहीं है—दार्शनिक नहीं हैं—'साइकॉलॉजिकल' है, मानसिक है। और इसका उत्तर—दर्शन शास्त्र में नहीं है, इसका उत्तर मनस्–शास्त्र में है। मनस्–शास्त्र यह कहता है कि जब कोई आदमी पूछे किसी चीज के संबंध में कि यह क्यों है? तो उसका उत्तर मत देना, समझना कि उसकी स्थिति गड़बड़ में पड़ गयी है। उसका इलाज करना। एक माँ पूछती है कि मेरा बेटा क्यों मर गया? तो हम क्या उत्तर देते! उसने बेटे के होने को तो चुपचाप स्वीकार किया था, न होने को वह स्वीकार नहीं कर पाती है। वह दुःख में भर गयी है। वह पीड़ा में भर गयी है। हम जब प्रश्न पूछते हैं पूरे जीवन के संबंध में, तो इसका मतलब है कि पूरा जीवन हमारा दुःख, चिंता, उदासी और गहरी पीड़ा से भर गया है।

इसलिये प्रश्न उठ रहा है। **अगर आनन्द से भर जायगा, प्रश्न खो जायगा।** जिस दिन पूरे आनन्द में कोई जीता है, उस दिन प्रश्न पूछता ही नहीं। असल में सब दर्शन, सब 'फिलासोफी' दुःख से पैदा होती है। सब दुःखी चित्त के जन्म हैं। आनंदित क्यों पूछे 'क्यों'? सवाल ही नहीं उठता, ख्याल ही नहीं उठता है। तो मैं आपसे यह नहीं कहता हूं कि आप न पूछें। जब तक चित्त दुःखी है, पूछेंगे ही। पूछते ही रहेंगे। लेकिन ध्यान रहे, दुःखी चित्त रहेगा, पूछते रहें, उत्तर नहीं मिलेगा, न दुखी चित्त मिटेगा। इस 'क्यों' को एक 'सिम्बल', एक प्रतीक समझना दुःखी चित्त का और प्रश्न की खोज में न जाके दुःखी चित्त को मिटाने की खोज में चले जाना। जिस दिन चित्त आनंद से भर जायगा, उसी दिन प्रश्न विदा हो जायँगे। ऐसे गिर जाते हैं कि पता ही नहीं चलता कि कभी थे भी। जो लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं, हम समझते हैं कि उनको सभी प्रश्नों के उत्तर मिल गये होंगे, तो हम बहुत गलत समझते हैं। **जो लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं, वे, वे लोग नहीं हैं, जिन्हें सभी प्रश्नों के उत्तर मिल गये। वे, वे लोग हैं, जिनके सभी प्रश्न गिर गये।** जिनके पास कोई प्रश्न ही न रहा। **प्रश्न पूछता है, अज्ञान से भरा चित्त। ज्ञान से भरा चित्त प्रश्न ही नहीं पूछता।** ऐसा नहीं है कि उत्तर मिल जाते हैं। मैंने कहा न, सन्निपात से उतर आया आदमी वापिस, तब यह थोड़े है कि उसको उत्तर मिल जाता है कि खाट पूरब उड़ती थी कि पश्चिम! उत्तर नहीं मिलता है, सिर्फ प्रश्न गिर जाता है। यह ख्याल रखना, ज्ञान में प्रश्न गिरते हैं, उत्तर नहीं मिलते हैं। सिर्फ प्रश्न गिर जाते हैं।

और जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं, वह प्रश्नों को गिरा देने की प्रक्रिया है। जहां सब प्रश्न गिर जाते हैं और चित्त उस आनंद में पहुंच जाता है। जो निष्प्रश्न है, जो 'अन्क्वश्चंड' है, जो बिना प्रश्न पूछे भीतर खड़ा हो जाता है। और जिसमें हम इस भांति लीन हो जाते हैं कि प्रश्न पूछ के भी खंडन उसका करने की हम हिम्मत न करेंगे, क्योंकि प्रश्न पूछने से बाधा हो जायगी। इतने रस में विभोर जब चित्त हो जाता है, तब प्रश्न नहीं पूछता। क्योंकि डरता है कि प्रश्न पूछा तो कहीं रस-खंडन न हो जाय। कहीं प्रश्न पूछा तो संगीत का बहाव टूट न जाय। यह भी सवाल नहीं उठता कि मैं पूछूं कि न पूछूं, सब खो जाता है। सब चुप हो जाता है—सब मौन हो जाता है, उस मौन में हम जानते हैं, उत्तर नहीं, यही कि हमारे सब प्रश्न गलत थे—अज्ञान से उठे थे—यही कि हमने पूछा वही भूल थी। और तब हमें गुरुओं पर बहुत हंसी आती है। क्योंकि, तब पता लगता है कि हमने जो पूछा वह तो पागलपन था ही, लेकिन जिन्होंने उत्तर दिये थे, वो भी गजब के पागल

थे। अब एक आदमी सन्निपात से नीचे उतर आया, अब उसे पता चला कि खाट उड़ती ही न थी, सिर्फ सन्निपात में प्रतीत होता था कि उड़ रही है। अब अगर घर में किसी ने उसका उत्तर दिया होगा कि पूरब उड़ती है तेरी खाट, तो वह आदमी कहेगा, यह आदमी पागल मालूम होता है। मैं तो सन्निपात में था, वह ठीक है, लेकिन इस आदमी ने कहा कि पूरब उड़ती है ! इसलिए मैं कहता हूं, **जिस दिन जीवन में वह क्रांति उतरती है, जिसे परमात्मा का मिलन कहें, उस दिन सभी गुरु एकदम पागल मालूम होते हैं—उस दिन बड़ी हैरानी होती है कि कैसे-कैसे जवाब देने वाले थे !** कोई कहता था, सात स्वर्ग हैं, कोई कहता था, सात नर्क हैं; कोई कहता था, तीन हैं; कोई कहता था, छै हैं। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ। हजार उत्तर थे, लाख उत्तर थे। हजार संप्रदाय थे, लाख गुरू थे। न मालूम कितने-कितने पंथ थे। न मालूम क्या-क्या जवाब थे। और मजा यह है कि वह जो प्रश्न पूछा था, वह अज्ञान में पूछा गया था। उसका कोई उत्तर ही न था। वह प्रश्न ही गलत था। असल में अज्ञान में ठीक प्रश्न पूछे ही नहीं जा सकते। अज्ञान में ठीक प्रश्न कैसे पूछे जा सकते हैं ! **अंधा आदमी प्रकाश को नहीं जानता तो प्रकाश के सम्बन्ध में ठीक सवाल कैसे पूछ सकता है ! और आँख वाला प्रकाश को जानता है इसलिये सवाल ही नहीं पूछता।** सवाल पूछने की कोई जरूरत नहीं है। अब यह दिक्कत है जीवन की कि आँख वाला सवाल नहीं पूछता प्रकाश के सम्बन्ध में, जो कि पूछे तो कुछ मतलब हो। और अंधा पूछता है, जिसके पूछने का कोई मतलब नहीं है। यहां हालतें ऐसी है कि लंगड़े चलने की कोशिश करते हैं और जिनके पैर हैं, वे आराम से बैठे हुए हैं। अंधे रास्ता खोज रहे हैं और जिनके पास आँखें हैं, वो विश्राम कर रहे हैं। वो रास्ता ही नहीं खोजते। ज्ञानी वो नहीं है, जिसको सब प्रश्नों के उत्तर मिल गये, ज्ञानी वो है, जो उस जगह पहुंचा शांति की, जहां उसने पाया सब प्रश्न फिजूल हैं और चुप रह गया और नहीं पूछा और पा गया सब। **जानना प्रश्नों का उत्तर नहीं है, जानना प्रश्नों का अभाव है, 'एबसेन्स' है, अनुपस्थिति है। ध्यान यही प्रयोग है, जहाँ सब अनुपस्थित हो जाता हैं और लहर धीरे से उतर के सागर के साथ एक हो जाती है।** और बहुत से प्रश्न रहे वह कल मैं बात करूंगा।

सुबह हम यहां ध्यान के लिए बैठ रहे हैं, तो जिनको उस जगह पहुंचना हो, जहां कि उससे प्रश्न पूछा जा सके परमात्मा से, सागर से, वह सुबह आ जाय। लेकिन सुबह सिर्फ वे ही लोग आयें जो लहर छोड़ के सागर में उतरने के लिए उत्सुक हैं, जो इतने अशांत हो गये हैं कि अब शांति की तरफ जाने का जिन्हें ख्याल आया है।

मेरी बातों को इतनी शांति से सुना, उससे बहुत अनुग्रहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

० ० ०

सागर के बीच मछरिया

—राजेन्द्र 'आकुल'

चहुं दिस है उस प्रभु की माया
मूढ़ मनुज ना जाने रे !
ज्यों सागर के बीच मछरिया
सागर ना पहचाने रे !

कण-कण का सब जोड़ वही है
भूल रहे हम भी कुछ हैं !
टूट रहे आपस में हम सब
सोच रहे हम भी कुछ हैं
पागल हाथ, हाथ से लड़ते
खुद क्या हैं ना जाने रे !
मूढ़ मनुज ना जाने रे !!

जनम-मरन क्या कुछ भी नहीं है
लहर उठे इक लहर गिरे
सागर तो बस रहता ही है
लहर उठे या लहर गिरे
लहर-लहर पकड़े जग पागल
अंतर को ना जाने रे !
मूढ़ मनुज ना जाने रे !!

उद्गम-स्रोत एक है सबका
भिन्न धर्म-मत हैं कैसे
बूंद-बूंद को नये नाम दे
नव-सागर गढ़ लें जैसे
धर्म एक है वह तो 'सत्' है
कोई न माने, माने रे !
मूढ़ मनुज ना जाने रे !!

('तेरा तुझको अर्पन' : तथाता को सप्रेम समर्पित)

पत्रों के अमृत आलोक से

(भगवान श्री के पत्र प्रेमी साधकों को)

प्रिय प्रज्ञान,

प्रेम। जीवन सदा संघर्ष है।

जैसे दिये की लौ अंधेरे से लड़ती और जीती है; ऐसा ही जीवन है। फिर जब भी अस्तित्व में नई छलांग का क्षण आता है, तभी पुराने अस्तित्व की सारी शक्तियां आक्रामक हो उठती हैं। तुम ऐसे ही संघर्ष से गुजर रहे हो। लेकिन यह शुभ है।क्योंकि, तुम्हारे जीवन में यह किसी नई छलांग की सूचना है। इससे भयभीत मत होओ। वरन संघर्ष का स्वागत करो। समग्र मन से और अनुग्रह पूर्वक। अज्ञात ऐसे ही आता है। ज्ञात को जगह खाली करनी पड़ती है। इसलिए वह बेचारा लड़ता है तो स्वाभाविक ही है न ? चित्त की बहुत पर्तें हैं। स्वयं से ही अनजान। उन अचेतन अंधकार-कक्षों से ही तुम्हारी वासनायें आक्रमण कर रही हैं। उन्हें समझो। और यह भी जानो कि तुमने ही दबा-दबा उन्हें अचेतन बनाया है। साधना के नाम पर साधारणतः दमन के अतिरिक्त और होता ही क्या है ? और संन्यास के नाम पर तो आत्मघात ही चलता है। रूपांतर के पूर्व तुम्हारे सब दमित रोग उभरेंगे। लेकिन, उभरें बिना उनसे मुक्ति भी नहीं है, इसलिए, जब वे उभरें तब सदा परमात्मा को धन्यवाद देना। और उन्हें दोबारा मत दबाना। जानना—देखना—समझना। एक शब्द में—उनके साक्षी बनना। उनके साथ कुछ करना ही नहीं। बस 'न करने में' खडे उनका दर्शन करना। दमन नहीं, दर्शन अब आगे के लिए यही तुम्हारा साधना-सूत्र है।

रजनीश के प्रणाम

(बैंगलोर के स्वामी प्रज्ञानंद को लिखा गया पत्र)

प्रिय रक्षा,

प्रेम। तुम्हारा पत्र मिला है। प्रेम मांगो मत। मांगा कि मिलना असंभव है। प्रेम भीख है ही नहीं। प्रेम है सम्राट। प्रेम है दान। इसलिए उसे बेशर्त दो। बांटो। और जो ले ले उसका अनुग्रह मानो। निश्चय ही प्रेम लौटता है। लेकिन वह परोक्ष उपलब्धि है। सीधा उसे लौटाया नहीं जा सकता है। प्रेम हो, या आनंद हो या परमात्मा—उन्हें सीधा नहीं पाया जाता

है। और जो पाने की वैसी कोशिश करता है, वह सदा रिक्त रह जाता है। ऐसी ही भूल में तुम हो। ऐसी ही भूल में अधिकतम मनुष्यता है। लेकिन जागो। अभी भी देर नहीं हो गई है। जीवन में देर कभी भी नहीं होती है। दो, दो और दो। बिना मांगे देती रहो। देने से बड़ा आनन्द पाने में भी नहीं है। और ध्यान रखो कि परमात्मा के नियमों में अन्याय नहीं है। जो देता है, वह पाता ही है। क्योंकि, पाना और देना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मधोक जी को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम

(सुश्री रक्षा मधोक, लुधियाना, को लिखा गया पत्र)

प्यारी चन्दन,

प्रेम। तेरा पत्र मिला है। तूने पूछा है— "विश्वास के अभाव में जीवन के सामान्य व्यवहार भी नहीं हो सकते हैं तो आध्यात्मिक प्रगति विश्वास के बिना कैसे संभव है ?"

पहली बात : संसार का सामान्य व्यवहार उतना ही असत्य है, जितना कि विश्वास। सत्य के लिए नहीं, असत्य के लिए ही विश्वास की अपेक्षा होती है। सत्य तो स्वयं सिद्ध है। उसके होने के लिए किसी अन्य सहारे की आवश्यकता नहीं है।

दूसरी बात : आध्यात्मिक जीवन की यात्रा संसार-व्यवहार से बिलकुल विपरीत है। वह आयाम ही मूलतः भिन्न है। इसलिए एक का नियम दूसरे के लिए अनियम है। निद्रा और जागृति में जैसा भेद है, ऐसा ही भेद वहां है। संसार के नियमों के अनुसरण से नहीं, वरन उनसे मुक्त होकर आध्यात्मिक प्रगति होती है।

तीसरी बात : विश्वास-अविश्वास विचार तल की घटनायें हैं। विचार से ज्यादा उनकी गहराई न है, न हो सकती है। और आंतरिक प्रवेश होता है निर्विचार से। इसलिए विचार को छोड़े बिना कोई मार्ग नहीं है।

चौथी बात : मैं जब छोड़ने को कहता हूं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि तब मैं अविश्वास को पकड़ने को कहता हूं। अविश्वास भी विरोधी विश्वास है। उसे भी छोड़ना है। तभी चित्त मुक्त होता है। और मुक्त चित्त ही आध्यात्मिक जीवन का द्वार है।

पांचवीं बात : विश्वास अविश्वास का अभाव नहीं, अविश्वास का दमन मात्र है। विश्वास के पीछे इसलिए हमेशा अविश्वास मौजूद होता है। उसे ही दबाने और छिपाने को तो विश्वास को पकड़ा और पोसा जाता है। और इस भांति चेतना द्वन्द्व से भर जाती है। यह द्वन्द्व ही तनाव है। यह द्वन्द्व

ही अशांति है। और आध्यात्यिक प्रगति के लिए चाहिए निर्द्वन्द्व भाव-दशा। इसलिए मैं विश्वास-अविश्वास के द्वन्द्व को छोड़ने को कहता हूं। और यह स्मरण रहे कि चित्त के किसी भी द्वन्द्व में एक को नहीं छोड़ा जा सकता है। वस्तुतः तो एक को छोड़ने और दूसरे को बचाने की चेष्टा से ही तो द्वन्द्व पैदा होता है। या तो दोनों ही छोड़ने पड़ते हैं या दोनों ही बच जाते हैं। क्योंकि वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। विश्वास-अविश्वास, राग-विराग आदि ऐसे ही द्वन्द्व हैं।

और तूने यह भी पूछा है कि स्वज्ञान को
प्रगट करने की प्रक्रिया क्या है?
मन को समस्त क्रियाओं से मुक्त और
शून्य कर लेना।
शून्य मन पूर्ण की अभिव्यक्ति की भूमिका है।
वहां सब को मेरे प्रणाम कहना।

रजनीश के प्रणाम।

प्यारी चन्दन,

प्रेम। तेरा पत्र मिला।

जिस मित्र ने मेरा साहित्य पढ़ना तू छोड़ सके तो हजार रुपया दान करने को कहा है—उनसे कहना कि हजार रुपये तो बहुत कम हैं आप थोड़ी और हिम्मत बढ़ावें तो परीक्षा हो सके कि आप कितना दान कर सकते हैं और चन्दन कितने दान पर लात मार सकती है।

धन जिनके पास है, उन्हें धन के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। प्रेम के प्रति तो वे बिल्कुल ही अंधे होते हैं। और इसीलिए परमात्मा का द्वार भी उनके लिये बंद हो जाता है।

क्राइस्ट ने व्यर्थ ही तो नहीं कहा है: "सुई के छेद से ऊंट भले ही निकल सके किंतु धनपति प्रभु के राज्य में प्रवेश नहीं पा सकता है।"

और "त्याग के धनियों" की कथा भी भिन्न नहीं है। त्याग के सिक्कों के संग्रह से वे भी वही करना चाहते हैं, जो कि चांदी के सिक्कों के मालिकों की आकांक्षा है। लेकिन वे भी प्रभु के राज्य में प्रविष्ट नहीं हो सकते हैं। वहां तो उसका ही प्रवेश है जो कि सब भांति निर्धन (Poor in spirit) है।

और यह जानकर मैं आनंदित होता हूं कि तू ऐसी ही निर्धन हुई जाती है।

रजनीश के प्रणाम

हंसते हंसते जाना है

---कृष्णदत्त दीक्षित

जीवन वस्तुतः एक अनबूझ पहेली है। हमारे आसपास न जाने कितनी ही ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जो अव्याख्य होती हैं और शायद इसीलिए उन्हें प्रायः चमत्कार की संज्ञा दे दी जाती है। अभी हाल मेरे घर एक ऐसी घटना घट गयी जिसके बारे में मैं नहीं जानता कि उसे अव्याख्य कहूं या चमत्कार या ऊंचे मनोबल की कहानी। जो कुछ भी हो, घटना इस प्रकार है—

मेरा पूरा परिवार लगभग एक वर्ष से योग-साधना में रत है। यह सब महायोगेश्वर आचार्य रजनीश का प्रभाव है। रजनीश की साधना-पद्धति कुछ इस ढंग की आकर्षक, कौतूहलपूर्ण और 'चैलैंजिग' है कि 'देखें क्या होता है?' सोचकर सबके सब साधना में उतर गये—पिताजी भी। वे पुराने फौजी हैं। १६१४ के विश्व-युद्ध में भाग ले चुके हैं। अस्सी के निकट पहुंच रहे हैं पर हर कार्य में बड़े चुस्त और फुर्तीले हैं, किंतु १६६५ से हृदय के मरीज हैं। 'कोरोनरी इनसफीसियेंसी' है। '६८ तक दो बार अस्पताल जाना पड़ा।

इस वर्ष अप्रेल से निरंतर उन्हें 'अन्जाइनल पेक्टोरिस' के 'अटेक्स' पड़ने लगे। दर्द इतना भयंकर होता था कि उनका तड़पना देखकर हम सब सकते में आ जाते थे। बार-बार के इन दौरों से डॉक्टर चिंतित थे और स्पष्ट कह चुके थे कि कब क्या होगा नहीं जानते? आधे जून तक यही दशा रही। डॉक्टर ने 'कम्पलीट रेस्ट' की सलाह दी थी; पर पिताजी ने एक दिन के लिए भी साधना नहीं छोड़ी।

१८ जून को दोपहर दो बजे उन्हें भयंकर दौरा पड़ा। मैं घर पर ही था। उन्हें हिम्मत रखने को कह मैं डॉक्टर को फोन करने भागा; किंतु वे पूरी शक्ति से चिल्लाये और लटपटाती जबान से बोले—मत बुलाओ डॉक्टर को। मैं किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया; क्योंकि इधर हाल में वे हिम्मत गंवाने लगे थे और जरा-सा कुछ होते ही डॉक्टर बुलाने का संकेत करते थे। मारे घबड़ाहट के मैं कुछ बोल न पाया। वे मुझे निकट आने का इशारा कर बोले—आज फैसला है। आज 'बुढ़ऊ' से निपटारा करना है। क्या रोज-रोज का मजाक लगा रक्खा है! (बड़े आश्चर्य की बात है कि पिताजी आचार्य रजनीश से उम्र में लगभग दुगने हैं; पर उन्हें बुढ़ऊ कहते हैं और उनका नाम लेते ही छोटे बच्चे की तरह हो जाते हैं।)

ऐसा कहकर, हम लोगों के मना करने के बावजूद वे उठ खड़े हुए। एक हाथ से हृदय दाबे, कांपते, लड़खड़ाते वे परम पूज्य आचार्य श्री की विशाल तस्वीर के तले जा खड़े हुए। सिर उठाकर देखा। चेहरा दर्द से विकृत हो रहा था। 'हूं' करके वे बड़ी तीव्रता से साधना करने लगे। एक डेढ़ मिनट बाद ही वे फर्श पर धड़ाम से गिर पड़े। हम लोगों का कलेजा मुंह को आ गया। दौड़कर उन्हें उठाया। बिस्तर पर लाये। उन्होंने मेरा हाथ कसकर पकड़ लिया था। मैं अभी भी डॉक्टर को बुलाना चाहता था; पर उन्होंने अस्फुट स्वर फिर में कहा—आज डॉक्टर नहीं ! बड़ी अजीब परिस्थिति में मैं फंस गया था। मारे डर के और घबड़ाहट के मैं जोर-जोर से रजनीश-रजनीश, भगवान-भगवान चिल्लाने लगा।

दस-पंद्रह मिनट बाद पिताजी ने आँखें खोली और उत्तेजित अवस्था में कहा— जाओ, जाओ, अपना काम करो। यहां क्यों बैठे हो ? अभी भी वे हृदय दबाये पड़े थे; पर चेहरे की चमक लौट रही थी। मैं चुपचाप उठा, रजनीश के चित्र को प्रणाम किया और भरे हृदय से सड़क पर उतर गया।

और फिर चमत्कार घटित हो गया। उस दिन से 'अन्जाइना-पेन' कहां चला गया, पता नहीं। पिताजी का घूमना-फिरना और चिल्ला-चिल्लाकर बातें करना पुनः आरम्भ हो गया है। १८ जुलाई को उन्हें लेकर आचार्य श्री के चरणों में गया। पिताजी को देखते ही वे हंसकर बोले—बस अब दवा-पानी मत लेना। ...अब दूसरे नगर की तैयारी करो और ध्यान रहे कि वहां बीमार नहीं, हंसते-हंसते, एकदम स्वस्थ जाना है !

—कृष्णदत्त प्रभुदयाल दीक्षित,
१२, गांजावाला टेरेस,
तारदेव, बम्बई—३४

प्रेम...! प्रेम...! प्रेम...!

—स्वामी अगेह भारती

अब, मैं मौन हो जाना चाहता हूं मेरे नाथ !
हां, अब मेरा लिखने-लिखाने का मन नहीं होता.
पहले जरूर मैं चाहता था कि तुम्हारी बातें दुनिया के कोने-कोने तक फैल जायँ.
और उसके लिए जो होता था—करता भी था
पर अब वह सब नहीं होता मेरे प्यार !
अब तो तुम्हारी बातें कुल पहुंच जायं और चाहे कहीं भी न पहुंचें—
इन सब फिक्रों से दूर— बहुत दूर प्रेम में डूब जाना चाहता हूं.
जहां न 'तू' रहे ! न 'मैं' !
बस, प्रेम...! प्रेम...! प्रेम...!

स्त्री-पुरुष जाति भेद

(बड़ौदा में भगवान श्री द्वारा दिया गया एक प्रवचन)

—संकलन : श्री एन. जी. बखारिया.

बहुत कारण हैं स्त्री और पुरुष भिन्न हैं—यह तो निश्चित है—लेकिन असमान नहीं। भिन्नता और असमानता दो अलग बातें हैं। भिन्न होना एक बात है। एक आदमी दूसरे आदमी से भिन्न है ही। कोई दो आदमी समान नहीं हैं। कोई दो पुरुष भी समान नहीं हैं। स्त्री और पुरुष भी भिन्न हैं। लेकिन भिन्नता को वर्ग बनाना, ऊंचा-नीचा बनाना, मनुष्यता का पुराना षड़यंत्र और शैतानी रही है। हजारों वर्षों तक, पिछले अतीत का इतिहास स्त्री के शोषण का इतिहास भी है। पुरुष ने ही चूंकि सारे काम निर्मित किये हैं, और पुरुष चूंकि शक्तिशाली था, उसने स्त्री पर जो भी थोपना चाहा, थोप दिया। और जब तक स्त्री के ऊपर की गुलामी नहीं उठती, तब तक दुनिया की गुलामी का बिलकुल अन्त नहीं हो सकता, राष्ट्र स्वतंत्र हो जायेंगे, आज नहीं कल, गरीब और अमीर के बीच के फासले भी कम हो जायेंगे, लेकिन स्त्री और पुरुष के बीच शोषण का जाल सबसे ज्यादा गहरा है। और स्त्री और पुरुष के बीच फासले की कहानी इतनी लंबी हो गयी है कि करीब-करीब भूल गयी है। स्वयं स्त्रियों को भी भूल गयी है, पुरुषों को भी भूल गयी है। इसके सम्बन्ध में थोड़ी बातों पर विचार करना उपयोगी होगा। इसलिये कि शायद आने वाली जिंदगी को जिसे आप बनाने में लगेंगे, हो सकता है स्त्री और पुरुष के बीच समानता का, स्वतंत्रता का एक समाज और एक परिवार निर्मित कर सकें। अगर ख्याल ही न हो तो हम पुराने ढांचे में ही जाने लगते हैं। हमें पता भी नहीं चलता कि कब हमने पुरानी लकीरों पर चलना शुरू कर दिया। आदमी सबसे ज्यादा सुगम इसे ही पाता है, जो हो रहा था वैसा ही होता चला जाय—'Least resistence' वही है। इसलिये पुराने ढंग का परिवार चलता चला जाता है। पुरानी समाज-व्यवस्था चलती चली जाती है। पुराने सोचने के ढंग चलते चले जाते हैं। तो इनमें कठिनाई मालूम पड़ती है। बदलने में मुश्किल मालूम पड़ती है। दो कारणों से—एक तो पुराने की आदत और दूसरा नये निर्माण करने की मुश्किल। सिर्फ वे ही पीढ़ियां हैं जो पुराने को तोड़ती है जो नये का सृजन करने की क्षमता

रखती है। विश्वास रखती है स्वयं पर। और स्वयं पर विश्वास न हो तो हम पुरानी पीढ़ी के पीछे चलते चले जाते हैं। वह पुरानी पीढ़ी भी अपने से पुरानी पीढ़ी के पीछे चल रही थी। कुछ छोटी-सी स्मरणीय बातें पहले हम ख्याल कर लें। पुरुष और स्त्री के बीच फासले, असमानता, किस-किस रूप में खड़ी हुई हैं ? भिन्नता सुनिश्चित है, और भिन्नता होनी ही चाहिये। भिन्नता ही स्त्री को व्यक्तित्व देती है और पुरुष को व्यक्तित्व देती है। लेकिन हमने भिन्नता को भी असमानता में बदल दिया। इसलिए सारी दुनिया में स्त्रियां भिन्नता को तोड़ने की कोशिश कर रही हैं ताकि वे ठीक पुरुष जैसी मालूम पड़ने लगें। उन्हें शायद ख्याल है कि इस भांति असमानता भी टूट जायगी।

मैंने सुना, एक सिनेमा केदरवाजे के सामने अमेरिका के किसी नगर में बड़ी भीड़ है; क्यू लगा हुआ है; लंबी कतार है; लोग टिकिट लेने को खड़े हैं। एक बूढ़े आदमी ने अपने सामने खड़े हुए व्यक्ति से पूछा, आप देखते हैं ? वह सामने जो लड़का खड़ा हुआ है उसने किस तरह के लड़कियों जैसे बाल बना रखे हैं? उस सामने वाले व्यक्ति ने कहा, माफ करिये वह लड़का नहीं है, वह मेरी लड़की है। उस बुड्ढे ने कहा, क्षमा करिये मुझे क्या पता था की आपकी लड़की है, तो आप उसके पिता हैं ? तो उसने कहा कि नहीं, मैं उसकी मां हूं।

कपड़ों का फासला कम किया जा रहा है। धीरे-धीरे, करीब-करीब कपड़े एक जैसे होते चले जा रहे हैं। हो सकता है सौ वर्ष बाद कपड़ों के आधार पर फर्क करना मुश्किल हो जाय। लेकिन कपड़ों के फासले कम हो जाने से भिन्नता नहीं मिट जायेगी। भिन्नता गहरी Biological और शारीरिक है। भिन्नता Psychological भी है, बहुत गहरे में कपड़ों से कुछ फर्क नहीं पड़ जाने वाला है। पुरुषों ने भी भिन्नता मिटाने के बहुत प्रयोग किये हैं। हमें ख्याल में नहीं है क्योंकि हम आदी हो जाते है। देवपुरुष या बुद्ध और महावीर की मूर्तियां और चित्र आपने देखे होंगे और अगर सोचते हों थोड़ा बहुत तो यह ख्याल आया होगा कि इन लोगों के चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ क्यों दिखायी नहीं पड़ती ? असंभव है यह बात। एकाध के साथ होगी,...किसी एक देवपुरुष बुद्ध, महावीर किसी एक को दाढ़ी-मूंछ न रही हो यह असंभव है। कभी हजार में एक पुरुष को नहीं भी होती है। लेकिन सभी देव-पुरुषों की दाढ़ी-मूंछ न होना बुद्धि की ही सारी कल्पना है! किसी की दाढ़ी-मूंछ नहीं है? कुछ कारण हैं पुरुष को ऐसा लगा है, स्त्री सुन्दर है। तो स्त्री जैसे होने से पुरुष भी सुन्दर हो जायेगा। फिर महापुरुष को तो हमने मान लिया कि उनकी दाढ़ी-मूंछ होती ही नहीं थी। फिर हम क्या करें ? तो सारी जमीन

पर पुरुष दाढ़ी-मूंछ काटने की कोशिश में लगा है। स्त्री जैसा चेहरा बनाने की चेष्टा चल रही है। उससे भी कोई भेद मिट जाने वाले नहीं हैं। न कपड़े बदलने से कोई फर्क पड़ने वाला है। न शरीर पर ऊपरी फर्क करने से कुछ फर्क पड़ने वाला है। भेद गहरा है। और अगर भेद मिटाने की कोशिश से हम चाहते हैं कि असमानता मिटे तो असमानता कभी भी नहीं मिटेगी। असमानता ऐसी ही थोपी हुई है। भेद में असमानता नहीं है। दो भिन्न व्यक्ति बिल्कुल समान हो सकते हैं। समान प्रतिष्ठा दी जा सकती है। पहली भूल मनुष्य ने यह की कि भिन्नता को असमानता समझा। Difference को Inequality समझा और अब उसी भूल पर दूसरी भूल चल रही है कि हम भिन्नता को कम कर लें। जो काम पुरुष करते हैं वे ही स्त्रियां करें। जो कपड़े वे पहनते हैं वे ही पहनें। जिस भाषा का वे उपयोग करते हैं, स्त्रियां भी वैसे ही करें। अमेरिका में जिन शब्दों का उपयोग स्त्रियों ने कभी भी नहीं किया था—मनुष्य के इतिहास में, कुछ गालियां सिर्फ पुरुष ही देते हैं, वह उनका ही गौरव है—अमेरिका की नयी लड़कियां उन गालियों को देने के लिये भी चेष्टा में संलग्न हैं। वे उन गालियों का उपयोग भी कर रही हैं। क्योंकि पुरुष के साथ समान खड़े हो जाने की बात है।

और ध्यान रहे, यह समानता का ख्याल ऐसा है कि हम सब जैसे भी हों, किसी भी तरह लीप-पोत कर एक-सा करदें तो शायद समानता उपलब्ध हो जाये। नहीं, समानता उससे उपलब्ध नहीं होगी। क्योंकि असमानता का भी मूल आधार वह नहीं है। असमानता किन्हीं और कारणों से निर्मित हुई है। और, जैसे हम कहानी सुनाते हैं कि सत्यवान मर गया है। सावित्री उसे दूर तक साथ जाके लौटा लायी है। लेकिन कभी कोई कहानी ऐसी नहीं सुनी जिसमें पत्नी मर गयी हो और पति दूर तक जाके लौटा लाया हो? नहीं सुना है हमने। स्त्रियां लाखों वर्ष तक इसी देश में पुरुषों के ऊपर बलिदान होती रही हैं, मर कर सती होती रही हैं। कभी ऐसा सुना कि कोई पुरुष भी किसी स्त्री के लिये सती हो गया हो? वह नहीं है। क्योंकि सारा मूल्य, सारी व्यवस्था, सारा अनुशासन पुरुष ने पैदा किया है। वह स्त्री पर थोपा हुआ है। सारी कहानियां उसने गढ़ी हैं। तो वह कहानी में कहता है जिसमें पुरुष को स्त्री बचाये लौट आती हो। वह ऐसी कहानी नहीं कहता जिसमें पुरुष स्त्री को बचा कर लौटता हो। वह तो एक स्त्री गयी कि पुरुष दूसरी स्त्री की खोज में लग जाता है। उसको बचाने की बात ही नहीं है।

पुरुष ने अपनी सुविधा के लिये सारा इन्तजाम कर लिया है। असल में जिनके पास थोड़ी-सी भी शक्ति हो किसी भी भांति की, वह जो थोड़ी भी

निर्बल हो, किसी भी भांति से, उनके ऊपर सवार हो ही जाते हैं—मालिक बन ही जाते हैं। गुलामी पैदा हो जाती है। पुरुष थोड़ा शक्तिशाली है—शरीर की दृष्टि से। ऐसे शरीर से शक्तिशाली होना किन्हीं ग्रौर कारणों में पुरुष को पीछे भी डाल देता है। पुरुष के पास Strength ग्रौर शक्ति तो ज्यादा है; लेकिन Resistence उतना ज्यादा नहीं है जितना स्त्री के पास है। ग्रौर ग्रगर पुरुष ग्रौर स्त्री दोनों को किसी पीड़ा में, तकलीफ में गुजरना पड़े तो पुरुष जल्दी टूट जाता है, स्त्री ज्यादा देर तक टिकती है। 'रेज़िस्टेंस' उसका ज्यादा है, प्रतिरोधक शक्ति ज्यादा है; लेकिन शारीरिक शक्ति कम है। शायद प्रकृति के लिए जरूरी है कि दोनों में यह भेद हो, क्योंकि स्त्री कुछ पीड़ायें झेलती है, जो पुरुष झेले तो टूट जाय। तो सारी पुरुष जाति कभी झेलने को राजी नहीं होती। नौ महीने तक एक बच्चे को पेट में रखना ग्रौर फिर उसे जन्म देने की पीड़ा ग्रौर फिर उसे बड़ा करने की पीड़ा—वह कोई पुरुष कभी राज़ी नहीं होगा। ग्रगर एक रात भी एक छोटे बच्चे के पास एक पति को छोड़ दिया जाय तो या तो वह उसकी गर्दन दबाने की सोचेगा या ग्रपनी गर्दन दबाने की सोचेगा।

मैंने सुना है एक सुबह मास्को की सड़क पर कोई एक आदमी छोटी-सी बच्चों की गाड़ी को धक्का देता हुग्रा चला जाता रहा है। सुबह है; लोग घूमने निकले हैं; फूल खिले हैं। वह ग्रादमी रास्ते में चलते-चलते बार-बार यह कहता है—ग्रब्राहम शांत रह, ग्रब्राहम। बच्चे के नाम का पता नहीं। वह किससे कह रहा है? वह बार-बार कहता है—ग्रब्राहम शांत रह, ग्रब्राहम धीरज रख। बच्चा रो रहा है। वह गाड़ी को धक्के दे रहा है। एक बूढ़ी ग्रौरत उसके पास ग्राकर कहती है। क्या बच्चे का नाम ग्रब्राहम है? वह ग्रादमी कहता है—क्षमा करना, ग्रब्राहम मेरा नाम है। मैं ग्रपने को समझा रहा हूं कि शांत रह, धीरज रख ग्रभी घर ग्रायेगा, धीरज रख। इस बच्चे को तो समझाने का सवाल नहीं; अपने को समझा रहा हूं कि किसी तरह दोनों सही-सलामत घर पहुंच जायें।

स्त्री के पास एक प्रतिरोधक शक्ति है, जो प्रकृति ने उसे दी है। एक रेज़िस्टेंस की ताकत है—बहुत बड़ी ताकत है। कितनी ही पीड़ा ग्रौर कितने ही दुःख ग्रौर कितने ही दमन के बीच भी जिन्दा रहती है ग्रौर मुस्कुरा भी सकती है। पुरुषों ने जितना दबाया है स्त्री को ग्रगर स्त्रियों ने उस दमन को, उस पीड़ा को कष्ट से लिया होता तो शायद वह कभी भी टूट गयी होती; लेकिन वह नहीं टूटी। उनकी मुस्कुराहट भी नहीं टूटी। इतनी लंबी परतंत्रता के बाद भी, उनके चेहरे पर कम तनाव है, पुरुष की बजाय। 'रेज़िस्टेंस' की

झेलने की, सहन करने की, 'टालरेन्स' की, सहिष्णुता की बड़ी शक्ति उनके पास है; लेकिन Muscular—बड़े पत्थर उठाने की और बड़ी कुल्हाड़ी चलाने की शक्ति उनके पास कम है। शायद जरूरी है कि पुरुष के पास वैसी शक्ति ज्यादा हो। उसे जो काम करने हैं, वह ऐसी शक्ति की मांग करते हैं। स्त्री को जो काम करने हैं वे वैसी शक्ति की मांग करते हैं। और प्रकृति करे या तो हम करें, परमात्मा इतनी व्यवस्था देता है जीवन को कि सब तरफ से जो जरूरी है जिसके लिए वह उसे मिल जाता है।

कभी हमने ख्याल भी नहीं किया—जमीन पर, इतनी बड़ी पृथ्वी पर कोई तीन-साढ़े तीन अरब लोग हैं—स्त्री या पुरुष सब मिलाकर। किसी घर में लड़के-लड़के पैदा हो जाते हैं, किसी घर में लड़कियां-लड़कियां भी हो जाती हैं; लेकिन अगर कोई पृथ्वी का हिसाब रखे तो लड़के और लड़कियां करीब-करीब बराबर पैदा होते हैं। पैदा होते वक्त तो बराबर नहीं होते लेकिन पांच छः साल में बराबर हो जाते हैं। पैदा होते वक्त एक सौ पच्चीस लड़के पैदा होते हैं १०० लड़कियों पर। क्योंकि लड़कों का 'रेजिस्टेंस' कम है, पच्चीस लड़के तो जवान होते-होते मर जाने वाले हैं। लड़के ज्यादा पैदा होते हैं, लड़कियां कम पैदा होती हैं; लेकिन जवान होते-होते लड़के और लड़कियों की संख्या दुनिया में करीब-करीब बराबर हो जाती है। कोई बहुत गहरी व्यवस्था भीतर से काम करती है, नहीं तो कभी ऐसा भी हो सकता है? इसमें कोई दुर्घटना तो नहीं कि जमीन पर स्त्रियां ही स्त्रियां हो जायें या पुरुष ही पुरुष हो जायें। यह संभावना है मगर कोई गहरे में व्यवस्था चल रही है। लेकिन भीतर कोई नियम काम करता है और नियम के पीछे कोई Biological व्यवस्था है। जितने अणु होते हैं, वीर्याणु होते हैं उनमें आधे स्त्रियों को पैदा करने में समर्थ हैं, आधे पुरुषों को। इसलिए कितने ही एक घर में भेद पड़े, बड़े विस्तार पर भेद बराबर हो जाता है।

स्त्री को वह शक्ति मिल रही है जो अपने काम को—और स्त्री का बड़े से बड़ा काम उसका मां होना है, उससे बड़ा काम संभव नहीं है और शायद मां होने से बड़ी संभावना पुरुष के लिए तो है ही नहीं, स्त्री के लिये भी नहीं है। मां होने की संभावना हम सामान्य रूप से ग्रहण कर लेते हैं। कभी आपने नहीं सोचा होगा—कितने पेन्टर हुए, कितने मूर्तिकार हुए, कितने चित्रकार, कितने कवि, कितने 'आर्कीटेक्ट'; लेकिन स्त्री कोई एक बड़ी चित्रकार नहीं हुई, कोई एक स्त्री कोई बड़ी आर्कीटेक्ट', वास्तुकला में कोई अग्रणी नहीं हुई, कोई एक स्त्री ने बहुत बड़े संगीत को जन्म नहीं दिया है। और कोई एक स्त्री ने कोई बहुत अद्भुत मूर्ति नहीं काटी। सृजन का सारा

काम पुरुष ने किया है तो कई बार पुरुष को ऐसा ख्याल आता है कि creative --सृजनात्मक शक्ति हमारे पास है; स्त्री के पास कोई सृजनात्मक शक्ति नहीं है। लेकिन बात उल्टी है। स्त्री पुरुष को पैदा करने में इतना ज्यादा श्रम कर लेती है कि और कोई सृजन करने की जरूरत नहीं रह जाती। स्त्री के पास अपना एक Creative work, एक सृजनात्मक कृत्य है। और इतना बड़ा कि कहां पत्थरकी मूर्ति बनाना! और कहां जीवित व्यक्ति को बड़ा करना! लेकिन स्त्री के इस काम को हमने सहज स्वीकार कर लिया है और इसलिए स्त्री की सारी सृजनात्मक शक्ति उसके मां बनने में लग जाती है, उसके पास और कोई सृजन की कोई न सुविधा बचती, न शक्ति बचती, न कोई आयाम, कोई dimension बचता न सोचने का कोई सवाल ही।

एक छोटे से घर को सुन्दर बनाने में वैसा हम कहेंगे कि छोटे-से घर को सुन्दर बनाने में कोई मायीकल ऐन्जल तो पैदा नहीं हो सकता! कोई वानगाग तो पैदा नहीं हो जायेगा! कोई कालिदास तो पैदा नहीं होगा! लेकिन मैं कुछ घरों में जाके ठहरता रहा हूं। एक घर में ठहरा था। मैं हैरान हो गया। गरीब घर है, बहुत सम्पन्न नहीं है; लेकिन इतना साफ-सुथरा, इतना स्वच्छ मैंने कोई घर नहीं देखा। लेकिन उस घर की प्रशंसा करने कोई कभी नहीं जायगा। घर की गृहिणी उस घर को ऐसा पवित्र बना रही कि कोई मन्दिर भी उतना स्वच्छ और पवित्र मालूम नहीं पड़ता। लेकिन उसकी फिक्र कौन करेगा ? कौन मायीकल ऐन्जल और कालिदास और वानगाग उसकी गिनती करेगा ? वह खो जायेगी। कोई औरत ऐसा काम कर रही है जिसके लिए कोई प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी। क्यों नहीं मिलेगी ? नहीं मिलेगी क्योंकि यह दुनिया पुरुषों की दुनिया है। स्त्री के विकास, स्त्री की संभावनाओं, स्त्रियों की जो Potentialities है, उनके जो आयाम, ऊंचाइयां हैं, उनको हमने गिनती में ही नहीं लिया है। अगर एक आदमी गणित में कोई नयी खोज करले तो Nobel prize मिल सकती है; लेकिन स्त्रियां निरंतर प्रेम के बहुत नये-नये आयाम खोजती हैं, कोई Nobel prize उनके लिये नहीं है; क्योंकि स्त्रियों की दुनिया नहीं है।

स्त्रियों का सोचने के लिये, स्त्रियों को नई दिशा देने के लिये, उनके जीवन में जो हो उसे भी मूल्य देने का हमारे पास कोई आधार नहीं है। हम सिर्फ पुरुषों को आदर देते हैं। इसलिए अगर इतिहास उठाकर देखो तो उसमें चंगेजखान, तैमूरलंग और हिटलर और स्टेलिन और माओ सबका स्थान है। लेकिन उसमें हमें ऐसी स्त्रियां खोजने में बड़ी मुश्किल पड़ जायगी---उनका कोई उल्लेख ही नहीं है, जिन्होंने एक सुन्दर घर बनाया हो, जिन्होंने एक

बेटा पैदा किया हो और जिसके साथ जिसे बड़ा करने में सारी मां की ताकत सारी प्रार्थना, सारा प्रेम जुटा दिया हो उसका कोई हिसाब नहीं मिलेगा।

पुरुष की एक तरफा और अधूरी दुनिया अब तक चली है और यह पूरा इतिहास है वह पुरुष का ही इतिहास है। इसलिये युद्धों का, हिंसाओं का इतिहास है। जिस दिन स्त्री भी स्वीकृत होगी और विराट मनुष्यता में उतना ही समान स्थान पा लेगी जितना पुरुष का है तो इतिहास भी ठीक दूसरी दिशा देना शुरू करेगा। मेरी दृष्टि में जिस दिन स्त्री बिलकुल समान हो जायगी, शायद युद्ध असंभव हो जायगा, क्योंकि युद्ध में कोई भी मरे, वह किसी का बेटा होता है, किसी का भाई होता है, किसी का पति होता है। लेकिन पुरुषों को मरने-मारने की ऐसी लम्बी बीमारी है—क्योंकि बिना मरे-मारे वे विश्व में कुछ सिद्ध नहीं कर पाते, वे बता ही नहीं पाते कि मैं भी कुछ हूं, तो मरने-मारने का एक लम्बा जाल है और फिर जो मर जाय ऐसे जाल में उसको आदर देना और उनमें स्त्रियों को भी राजी कर लिया है कि जब तुम्हारे बेटे युद्ध पर जायं तो तुम टीका करना। वह रो रही है मां, आँसू टपक रहे हैं और वह टीका लगा रही है और आशीर्वाद दे रही है। यह पुरुष ने जबरदस्ती तैयार करवाया है।

सब व्यवस्था, सब सोचना, सारी संस्कृति, सारी सभ्यता पुरुष के गुणों पर खड़ी है। इसलिये पूरा मनुष्य का इतिहास युद्धों का इतिहास है। अगर हम ३००० वर्ष की कहानी उठाकर देखें तो मुश्किल मालूम पड़ता है कि आदमी कभी ऐसा रहा हो जब युद्ध न रहा हो। युद्ध चल ही रहा है। आज इस कोने में आग लगी है जमीन के, कल दूसरे कोने में, परसों तीसरे कोने में। आग लगी ही है, आदमी जल ही रहा है, आदमी मारा ही जा रहा है। अब तो हम उस जगह पहुंच गये हैं जहां हमने बड़ा इन्तजाम किया है। अब हम आगे आदमी को बचने नहीं देंगे। अगर पुरुष सफल हो जायगा अपने अंतिम उपाय में, तीसरे महायुद्ध में, तो शायद मनुष्यता नहीं बचेगी। इतना इंतजाम तो कर लिया है कि हम पूरी पृथ्वी को नष्ट कर दें। पूरी तरह से नष्ट कर दें। यह पुरुष के इतिहास की आखिरी जो Climax (चरमस्थिति) हो सकती थी, जहां हम पहुंच गये हैं। पर हम क्यों पहुंच गये हैं? क्योंकि पुरुष गणित में सोचता है, प्रेम उसके सोचने की भाषा नहीं। ध्यान रहे, विज्ञान विकसित हुआ है, धर्म विकसित नहीं हो सका और धर्म तब तक विकसित नहीं होगा जब तक स्त्री जीवन और संस्कृति में समान योगदान नहीं करती है और उसे योगदान का मौका नहीं मिलता है। गणित से जो चीज विकसित होती है वह विज्ञान है। गणित परमात्मा तक ले जाने वाला नहीं है, चाहे दो और दो

कितनी बार जोड़ो तो भी बराबर परमात्मा होने वाला नहीं। गणित कितना ही बढ़ता चला जाय, वह पदार्थ से ऊपर जाने वाला नहीं है। प्रेम परमात्मा तक पहुंच सकता है, लेकिन हमारी सारी खोज गणित की है, तर्क की है—वह विज्ञान को लेकर खड़ी हो गई, उससे आगे नहीं जा सकती। प्रेम की हमारी कोई खोज नहीं है। शायद प्रेम की बात करना भी हम स्त्रियों के लिये छोड़ देते हैं या कवियों के लिये, जिनको हम करीब-करीब स्त्रियों जैसा गिनती करते हैं। उनकी गिनती हम पुरुषों में नहीं करते। नीत्से ने तो एक अद्‌भुत बात लिखी है, खतरनाक, किसी को बहुत बुरी भी लग सकती है। नीत्से ने तो यह बात लिखी है—मैं मानता हूं सच है। उसने तो क्रोध में लिखी है और गाली देने के इरादे से लिखी है; लेकिन बात सच है। नीत्से ने लिखा है कि बुद्ध और क्राइस्ट को मैं Womanish मानता हूं, स्त्रैण मानता हूं। बुद्ध और क्राइस्ट को मैं पुरुष नहीं मानता; क्योंकि जो लड़ने की बात ही नहीं करते। और जो लड़ने से बचने की बात करते हैं वह पुरुष कैसे हो सकते हैं ? पुरुषत्व तो लड़ने में ही है। नीत्से ने कहा, मैंने सुन्दरतम जो दृश्य देखा है जीवन में वह तब देखा जब सूरज की ऊगती रोशनी में, सिपाहियों की चमकती हुई तलवारें और उनके चमकते हुए बूटों की आवाजें, मैंने उससे सुन्दर दृश्य जीवन में नहीं देखा। अगर यह आदमी मानता है कि ऐसा दृश्य सुन्दर है तो फूल स्त्रैण हो जायेंगे। निश्चित ही, जब चमकती हुई संगीने सुन्दर हैं तो फूल कहां टिकेंगे ! फूलों को बाहर करना होगा सौन्दर्य के।

और जब नीत्से कहता है कि जो लड़ते हैं और लड़ सकते हैं और लड़ते रहते हैं—युद्ध ही जिनका जीवन है, वे ही पुरुष हैं तो ठीक हैं, बुद्ध और क्राइस्ट और महावीर को अलग कर देना होगा। उनकी स्त्रियों में ही गिनती करनी पड़ेगी। लेकिन दुनिया में जो भी प्रेम के रास्ते से गया हो उसमें किसी न किसी अर्थों में नीत्से का कहना ठीक है कि स्त्रैण है, यह अपमानजनक नहीं है। अगर पुरुषों ने प्रेम किया हो तो वह जो पुरुषों की आम धारणायें हैं—युद्ध की, संघर्ष की, हिंसा की, Violence की—वे गिर जाती जाती हैं और नई धारणायें पैदा होती हैं सहयोग की, क्षमा की, प्रेम की।

बुद्ध का एक भिक्षु था। उस भिक्षु का नाम था पूर्ण। उसकी शिक्षा पूरी हो गयी। और शिक्षा पूरी हो जाने पर बुद्ध ने उससे कहा कि पूर्ण, अब तू जा और मेरे प्रेम की खबर लोगों तक पहुंचा दे। तू वहां जरूर जा जहां कोई भी न गया हो ! वहां खबर ले जा प्रेम की, हिंसा की खबरें बहुत पहुंचाई गयी हैं। कोई प्रेम की खबर भी पहुंचा दे। उस पूर्ण ने बुद्ध के पैर छुए और कहा कि मुझे आज्ञा दें कि मैं सूखा नाम का बिहार का छोटा-सा एक हिस्सा

है वहां जाऊं और आपका संदेश ले जाऊं। बुद्ध ने कहा, वहां तू मत जा तो बड़ी कृपा हो। वहां के लोग अच्छे नहीं हैं। वहां के लोग बहुत बुरे हैं। पूर्ण ने कहा—पर मेरी वहां जरूरत है। जहां लोग बुरे हैं और अच्छे नहीं है वहां तो प्रेम का संदेश ले जाना पड़ेगा। बुद्ध ने कहा—फिर मैं तुझसे दो-तीन प्रश्न पूछता हूं, तू उत्तर दे दे, तब जा। सबसे पहले पूछता हूं कि वहां के लोगों ने अगर तेरा अपमान किया, गालियां दीं तो तुझे क्या होगा ? पूर्ण ने कहा क्या होगा ? मैं सोचूंगा, लोग कितने अच्छे हैं, सिर्फ गालियां देते हैं, अपमान करते हैं, मारते नहीं; मार भी सकते हैं। बुद्ध ने कहा—यहां तक भी ठीक है, लेकिन मगर वे मारने लगे ? वे लोग बुरे हैं मार भी सकते हैं। अगर उन्होंने मारा और तेरे प्रेम के संदेश पर पत्थर फेंके और लकड़ियां तेरे सिर पर बरसें तो तुझे क्या होगा ? पूर्ण ने कहा, क्या होगा ? मुझे यही होगा, लोग अच्छे हैं, सिर्फ मारते हैं, मार ही नहीं डालते। बुद्ध ने कहा—मैं तीसरी बात और पूछता हूं, अगर उन्होंने तुझे मार ही डाला तो मरते क्षण तेरे मन को क्या होगा ? पूर्ण ने कहा— मेरे मन को होगा, कितने भले लोग हैं ? मुझे उस जीवन से मुक्त कर दिया, जिसमें भूल-चूक हो सकती थी— जिसमें मैं भटक भी सकता था—जिसमें मैं भी मारने को तैयार हो सकता था, उससे मुक्त कर दिया। बुद्ध ने कहा—अब तू जा, तेरा प्रेम पूरा हो गया। और जिसका प्रेम पूरा हो गया है वही युद्ध के विपरीत, हिंसा के विपरीत खबर और हवा ले जा सकता है। तू जा।

स्त्रियां जिस दिन मनुष्य की संस्कृति में समान, पुरुष के साथ खड़ी हो सकेंगी और मनुष्य की संस्कृति में आधा दान उनका होगा, उस दिन गणित अकेली चीज नहीं होगी—उस दिन प्रेम भी एक चीज होगी। और प्रेम गणित से बिलकुल उल्टा है। धर्म विज्ञान से बिलकुल उल्टा है। गणित की और ही दुनिया है। मिलिट्री में हम आदमियों के नाम हटा देते हैं—नंबर दे देते हैं। अगर आप भरती हो गये, अगर मैं भरती हो जाऊँ तो ग्यारह बारह, पंद्रह ऐसा नंबर हो जायेंगे। और जब एक आदमी मरेगा तो मिलिट्री के ऑफिस के बाहर नोटिस लग जायगा, बारह नंबर गिर गया। आदमी नहीं मरता मिलिट्री में, सिर्फ नंबर मरते हैं। आदमी के ऊपर भी हम नंबर लगा देते हैं उसका फर्क बहुत ज्यादा है। अगर पता चले कि फलाँ आदमी मर गया— जिसकी पत्नी है, जिसके छोटे बेटे हैं, जिसकी बूढ़ी माँ है—वे सब असहाय हो गये। फलाँ आदमी मर गया तो एक आदमी की तस्वीर उठती है। लेकिन बारह नंबर की न कोई पत्नी होती है न कोई बेटे होते हैं। नंबर की कहीं पत्नियां और बेटे होते हैं ? नंबर बिलकुल नंबर है। जब बारह

नंबर गिरने का बोर्ड पर नोटिस लगता है तो लोग पढ़के निकल जाते हैं। गणित का एक सवाल जैसा होता है कि कितने नंबर गिर गये, कितने नंबर खत्म हो गये। दूसरे नंबर उनकी जगह खड़े हो जायेंगे। बारह नम्बर दूसरे आदमी पर लग जायगा। दूसरा आदमी बारह नंबर की जगह खड़ा हो जायगा। गणित में Replacement संभव है, जिंदगी में तो नहीं। एक आदमी मरा, दुनिया में कोई दूसरा आदमी उसकी जगह Replace नहीं हो सकता। लेकिन गणित में कोई कठिनाई नहीं। गणित में हो सकता है। इसलिये तो मिलिटरी में तकलीफ नहीं होती। नंबर ही गिरते हैं। नंबर ही मरते हैं। और हमने पूरी जो व्यवस्था की है—गणित में सोचने वाला आदमी जो व्यवस्था करता है वह उतनी ही कठोर, यांत्रिक, 'मेकेनिकल' और जड़ होती है।

मैंने सुना है जिस आदमी ने सबसे पहले Average औसत का नियम खोजा—जब कोई आदमी कोई नया नियम खोज लेता है तो बड़ी प्रफुल्लता से भर जाता है—हम तो जानते हैं, आर्कमिडीज तो नंगा ही बाहर निकल आया और चिल्लाने लगा, अकेला, अकेला, मिल गया और भूल गया कपड़े को इतनी खुशी से भर गया—जिस आदमी ने औसत का नियम खोजा वह भी इतना खुशी से भर गया। जिस दिन उसने सिद्धांत खोजा उस दिन अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर पिकनिक पर गया। Average का मतलब—हिंदुस्तान में Average आदमी की कितनी आमदनी है ? और मजा यह है कि Average आदमी होता ही नहीं—एवरेज आदमी बिलकुल झूठी बात है। एवरेज आदमी कहीं नहीं मिलता। एवरेज आदमी की आय १ रुपया है तो आप ऐसा आदमी नहीं खोज सकते जो एवरेज आदमी हो। पंद्रह आने वाला मिलेगा, सत्रह आने वाला मिलेगा, लाख वाला मिलेगा, पौने सोलह आने वाला मिलेगा, दस पैसे वाला मिलेगा, भूखा मिलेगा। ठीक एवरेज आदमी पूरे हिंदुस्तान में खोजें तो भी नहीं मिलेगा; क्योंकि एवरेज गणित से निकली हुई बात है, आदमी की जिंदगी से नहीं।

हम यहाँ कितने लोग बैठे हैं। हम सबकी ऐवरेज उम्र निकाली जा सकती है। सबकी उम्र जोड़ दो और सब आदमियों की गणना का भाग दे दिया। आ गया ग्यारह साल, पंद्रह दिन या पचास साल या कुछ भी। उस आदमी को खोजने निकलोगे exact पचास साल, पांच दिन, तीन घंटे, पंद्रह मिनट का कौन आदमी है ? वह नहीं मिलेगा। वह है ही नहीं कहीं। ऐवरेज आदमी गणित का सिद्धांत है, आदमी की जिंदगी का नहीं।

उस गणितज्ञ ने ऐवरेज का सिद्धांत निकाल लिया। अपनी पत्नी बच्चों को लेके पिकनिक पर गया। रास्ते में एक नाला आया। उसकी पत्नी ने कहा, नाले को जरा ठीक से देख लो। छोटे बच्चे हैं। पांच-सात बच्चे हैं। कोई डूब न जाय। उसने कहा—ठहर, मैं बच्चों की ऐवरेज ऊंचाई नाप लेता हूं और नाले की ऐवरेज गहराई। अगर ऐवरेज गहराई से ऐवरेज बच्चा ऊंचा है तो बेफिक्र होके पार हो सकते हैं। उसने जाकर अपना फुट निकाला। फुट साथ रखा होगा। नाप कर लिया। बच्चे नाप लिये। ऐवरेज बच्चा ऐवरेज गहराई से ऊंचा था। कोई बच्चा बिलकुल छोटा था, कोई बच्चा बड़ा भी था। और कहीं नाला बिलकुल उथला था और कहीं गहरा भी था। लेकिन वह ऐवरेज में नहीं आता, गणित में नहीं आता। उसने कहा—बेफिक्र रहो, मैंने बिलकुल हिसाब ठीक कर लिया। रेत पर हिसाब लगा लिया। आगे गणितज्ञ हो गया, बीच में उसके बच्चे हैं, पीछे उसकी पत्नी थोड़ी डरी हुई है। स्त्रियों का गणित पर कभी भरोसा नहीं रहा है। थोड़ा गये कि उसे लगा कि कुछ गड़बड़ हुई जा रही है। क्योंकि नाला कई जगह गहरा मालूम पड़ता है। उसने देखा कि उसके पति का कोट कहीं बिलकुल डूब गया है। एक छोटा बच्चा भी है। वह सचेत है लेकिन पति अकड़के आगे चला जा रहा है। एक बच्चा डूबने लगा उसकी पत्नि ने चिल्लाकर कहा कि देखिये, बच्चा डूब रहा है। आप समझते हैं उस आदमी ने क्या किया? पुरुष ने क्या किया? उसने कहा— यह हो ही नहीं सकता; क्योंकि गणित गलत कैसे हो सकता है? बच्चे को बचाने की बजाय वह भागकर नदी के उस तरफ गया जहां उसने रेत पर गणित किया था। पहले उसने गणित देखा कि गणित गलत तो नहीं है। नहीं, वह चिल्लाया कि यह हो ही नहीं सकता। गणित बिलकुल ठीक है।

गणित एक दशा है। जहां जड़ नियम होते हैं। चीजें तोली नापी जा सकती हैं। अब तक पुरुष ने जो संस्कृति बनायी है वह गणित की संस्कृति है। जहां नाप-तोल-जोख सब है। स्त्री का कोई हाथ इस संस्कृति में नहीं है; क्योंकि उसे समानता का कोई हक नहीं है। उसे कभी हमने पुकारा नहीं कि तुम आओ और तुम एक बिलकुल दूसरे आयाम-प्रेम के आयाम से भी जांच करो कि समाज कैसा हो। स्त्री अगर सोचेगी तो और भाषा में सोचती है। असल में उसका सोचना भी हमसे बहुत भिन्न है। उसे हम सोचना भी नहीं कह सकते। भावना कह सकते हैं। पुरुष सोचता है। स्त्री भाव रखती है। सोचना नहीं कह सकते; क्योंकि सोचना गणित की दुनिया का हिसाब है। और इसलिये पुरुष हमेशा हिसाब लगाता है। स्त्री हिसाब के आस पास चलती

है। ठीक हिसाब नहीं लगा पाती। ठीक हिसाब नहीं है उसके पास। लेकिन जिंदगी अकेला गणित नहीं है। जिंदगी बहुत बड़े अर्थों में प्रेम है, जहां कोई हिसाब नहीं होता है। जहां कोई गणित नहीं होता। जिंदगी बहुत अनबूझ पहेली है। और इस जिंदगी को अगर हमने गणित की सीधी-साफ रेखाओं पर निर्मित किया तो हम सीधी-साफ रेखायें बना लेंगे पर आदमी बुझता चला जायगा, मिटता जायगा। और यह हो रहा है। रोज यह हो रहा है कि आदमी की जड़ें नीचे से कट रही हैं। क्योंकि हम जो इंतजाम कर रहे हैं वह ऐसा इंतजाम है जिसके ढांचे में जिंदगी नहीं पल सकती। जैसे कि समझ लें एक फूल मुझे बहुत प्यारा लगे तो मैं एक तिजोरी में उसे बंद कर दूं। गणित यही कहेगा, तिजोरी में बंद करलो—ताले लगा लो जोर से। मुझे सूरज की रोशनी बहुत अच्छी लगे तो पेटी में बंद कर दूं, अपने घर रखूं बांधकर। लेकिन जिंदगी पेटियों में बंद नहीं होती! न गणित की पेटियों में, न साइंस की पेटियों में। कभी बंद नहीं होती। जिंदगी बाहर दूर जाती है। एकदम छूट जाती है। अगर यहां हवा है और मैं मुट्ठी जोर से बाँधू और सोचूं कि हवा को हाथ के भीतर बंद कर लूंगा तो मुट्ठी जितनी जोर से बंधेगी, हवा उतनी ही हाथ से बाहर हो जायगी। जिंदगी बंधना मानती नहीं। जिंदगी एक तरलता और एक बहाव है। लेकिन हमारी, पुरुष की चिंतन की सारी जो 'कारीगरी' है, पुरुष के सोचने का ढंग है, वह सब चीजों को बांधता है। व्यवस्था में बांध लेता है, हिसाब में बांध लेता है। अगर उससे पूछो कि माँ का क्या मतलब है तो वह कहेगा, बच्चे पैदा करने की एक मशीन है। और क्या हो सकता है? एक वैज्ञानिक की मैं किताब पढ़ रहा था। उस वैज्ञानिक से किसी ने पूछा—मुर्गी क्या है? तो उस आदमी ने कहा—मुर्गी अंडे की तरकीब है और अंडे पैदा करने के लिये! और क्या हो सकता है? गणित ऐसे सोचेगा। सोचेगा ही। गणित इससे भिन्न सोच भी नहीं सकता। विज्ञान इससे भिन्न सोच भी नहीं सकता। विज्ञान आत्मा की गणना नहीं करता। जीवन की गणना नहीं करता। चीजों को काट लेता है, काटकर खोज लेता है, विश्लेषण कर लेता है और विश्लेषण में जो जीवन था वह एकदम खो जाता है। पुरुष ने जो दुनिया बनायी है वह अधूरे पुरुष से अधूरी दुनिया बन गयी।

पुरुष अधूरा है यह ध्यान रहे। और स्त्री के साथ बिना उसकी संस्कृति अधूरी होगी, तो एक-एक घर में पुरुष एक-एक स्त्री को तो ले आया है। एक-एक घर में तो पुरुष अकेला जीने को राजी नहीं है। स्त्री भी अकेले रहने को राजी नहीं है। चाहे कितनी भी कलह हो, स्त्री और पुरुष साथ रह रहे हैं। लेकिन संस्कृति और सभ्यता की जहां दुनिया है वहां स्त्री का बिलकुल

प्रवेश नहीं हुआ। वहां पुरुष बिलकुल अकेला है। और पुरुष बिलकुल अधूरा है। स्त्री अधूरी है। वे Complimen tary हैं। दोनों का मिलकर एक पूर्ण व्यक्तित्व बनता है। लेकिन मनुष्य की संस्कृति अधूरी सिद्ध हो रही है; क्योंकि वह आधे पुरुष ने ही निर्मित की है। स्त्री ने कभी मांग नहीं की। स्त्री सब गड़बड़ कर देती है अगर वह आये तो। अगर लेबोरेटरी में उसे ले जाओ तो बजाय इसके कि वह आपको टेस्ट-ट्यूब में क्या हो रहा है वह देखें, वह टेस्ट-ट्यूब के रंग को बनाने की कोशिश करेगी। स्त्री को लेबोरेटरी में ले जाओ, गड़बड़ होनी शुरू हो जायगी। या पुरुष को स्त्री की बगिया में ले जाओ तो भी गड़बड़ होनी शुरू हो जायगी। इस गड़बड़ के डर से हमने कम्पार्टमेंट बांट लिये। पुरुष की एक दुनिया बना ली है, स्त्री की एक अलग दुनिया बना ली है, और दोनों के बीच एक बड़ी दीवार खड़ी कर ली है। और दीवार खड़ी करके पुरुष अकड़ गया है। वह कहता है—मुझसे तुम्हारा मुकाबला क्या ? तुम कुछ कर ही नहीं सकतीं, इसलिए घर में बंद रहो। तुमसे कुछ हो नहीं सकता। हम पुरुष ही कुछ कर सकते हैं। हम पुरुष श्रेष्ठ हैं। स्त्रियो, तुम्हारा काम है कि तुम बरतन मलो, खाना बनाओ, बस इतना—इससे ज्यादा तुम्हारा कोई काम नहीं है। बच्चों को बड़ा करो। यह सब पुरुष ने स्त्री को दीवार में बन्द करके वहां सौंप दिया है। और वह बाहर अकेला मालिक होकर बैठ गया है।

सब तरफ पुरुष इकट्ठे हो गये। Culture की, जहां दुनिया है संस्कृति की, वहां पुरुष इकट्ठे हो गये हैं; स्त्रियां वर्जित हैं। स्त्रियां अस्पृश्य की भांति बाहर कर दी गईं। मेरी दृष्टि में इसीलिए मनुष्य की सभ्यता अब तक सुख और आनंद की सभ्यता नहीं बन सकी है। अब तक मनुष्य की सभ्यता पूरी 'इन्टीग्रेट' नहीं बन सकी है। उसका आधा अंग बिलकुल ही काट दिया गया है। इस आधे अंग को वापिस समान हक न मिले, इसे वापिस जीवन का पूरा अवसर—स्वतंत्रता न मिले तो मनुष्य का बहुत भविष्य नहीं माना जा सकता—मनुष्य का भविष्य एकदम अंधकारमयपूर्ण कहा जा सकता है। स्त्री को लाना है—उसे समान अवसर और स्वतन्त्रता देकर उसके व्यक्तित्व को उठाना है।

भेद हैं, भिन्नतायें हैं। भिन्नताएं आनंद पूर्ण हैं। भिन्नताएँ दुःख का कारण नहीं हैं। और हमने भिन्नता के आधार पर असमानता को इतना मजबूत कर लिया है कि कल्पना के बाहर है कि स्त्री और पुरुष मित्र हो सकते हैं। पुरुषों को लगता ही नहीं कि स्त्री और पुरुष मित्र ! मित्र नहीं हो सकती, पत्नी हो सकती है—पत्नी अर्थात दासी !

और जो, वह चिट्ठी लिखती है कि 'आपकी चरणों की दासी' तो पुरुष बड़ा प्रसन्न होता है पढ़कर ! बहुत प्रसन्न होता है कि ठीक पत्नी मिल गई है—ऐसी ही पत्नी होनी चाहिये । ऋषि-मुनि समझाते हैं कि पत्नी पुरुषों को परमात्मा माने । पुरुष खुद ही समझा रहा है कि मुझे परमात्मा मानो; और स्त्रियों के दिमाग को वह तीन हजार साल से 'कंडीशन' कर रहा है । और उनके दिमाग में यह प्रचार कर रहा है कि मुझे यह मानो । पुरुषों ने किताबें लिखी हैं, जिसमें उन्होंने लिखा है कि स्त्री तो अगर कल्पना भी करके दूसरे पुरुष के संबंध में सोचे तो पापिनी है । और पुरुष अगर वेश्या के घर भी जाय तो पवित्र स्त्री वही है जो उसे कंधे पर बिठाकर वेश्या के घर पहुंचा दे । मजेदार लोग हैं—बहुत मजेदार लोग हैं; लेकिन यह स्वीकृत हो गया है । इसमें स्त्रियों को भी ऐतराज नहीं है—कितने दिन से 'प्रोपेगेंडा' ही कुछ ऐसा किया गया, उनकी खोपड़ी पर 'हेमरिंग' की गई है कि उन्होंने सब सहज रूप में मान लिया । बचपन से ही उन्हें नंबर दो की स्थिति स्वीकार करने के लिए माँ-बाप तैयार करते हैं । वह नम्बर एक नहीं हैं वह नंबर दो हैं, उसकी स्वीकृति बचपन से ही उनके मन में थोपी जाती है । पूरी संस्कृति, पूरी सभ्यता, पूरी व्यवस्था से कैसे छुटकारा हो ? कैसे स्त्री, पुरुष के समान खड़ी हो सके ? बहुत कठिन मामला मालूम पड़ता है; लेकिन दो-तीन सूत्र कहना चाहता हूं । उनके बिना शायद स्त्री पुरुष के समान खड़ी नहीं हो सकती । और ध्यान रहे, पूरी परिस्थिति नहीं बदलती है—पुरुष कितना भी कहे कि तुमको भी तो समान हक है वोट करने का, तुम समान हो ।

सब बातें ठीक हैं । असमानता क्या है ? इससे कुछ हल नहीं होगा । स्त्री के नीचे उसकी जीवन की गुलामी में, उसकी असमानता में कुछ कारण हैं; जैसे—जब तक स्त्रियों की कोई अपनी आर्थिक स्थिति नहीं है; जब तक उसकी कोई अपनी 'एकानामी'—अर्थगत, संपत्तिगत अपनी कोई स्थिति नहीं है, तब तक स्त्रियों की समानता बातचीत की बात होगी । हम कहते हैं, गरीब, अमीर समान है । वोट का हक दोनों को बराबर है । सब ठीक है; लेकिन गरीब, अमीर समान कैसे हो सकते हैं ?

और स्त्रियों से ज्यादा गरीब कोई भी नहीं है; क्योंकि हमने उनको आर्थिक रूप से कमाने के क्षेत्र में बिलकुल अपंग कर दिया है, पैदा करने से अपंग कर दिया है—वह कुछ पैदा नहीं करती है, न कुछ कमाती, न कुछ जिंदगी में आकर बाहर का कुछ काम करती । उसे घर के भीतर बन्द कर दिया । उनकी गुलामी का मूल सूत्र यह है—वह जब तक आर्थिक रूप से बंधी है तब तक वह समान वैयक्तिक स्तर पर जी भी नहीं सकती । और बुरा है

यह, एकदम बुरा है; क्योंकि स्त्रियां सब तरफ फैल जायें—सब कामों में तो पुरुष के सब तरफ के कामों में जो पुरुषपन आ गया है, वह सब शिथिल हो जाये। हम जानते हैं—फर्क बहुत स्पष्ट है, स्त्री के प्रवेश से ही एक और हवा हर दफ्तर में प्रविष्ट हो सकती है—हो ही जाती है। एक क्लास जहां लड़के हो लड़के पढ़ रहे हैं और पुरुष ही पढ़ा रहा है; एक और तरह की क्लास है, जहां चार लड़कियां भी आकर बैठ गई हैं, क्लास की हवा में फर्क पड़ गया है—बुनियादी फर्क पड़ गया है। ज्यादा कोमल, ज्यादा सुगध से भरी वह हवा हो गई है। कम पुरुष, कम कठोर, चीजें शिथिल हो गई हैं। और चीजें ज्यादा शिष्ठ हो गई हैं। स्त्री को जीवन के सब पहलुओं पर फैला देने की जरूरत है। ऐसा कोई काम नहीं है जो कि स्त्रियां ना कर सकती हों।

रूस में स्त्रियों ने सब काम करके बता दिया है—हवाई जहाज के पायलट होने से लेकर छोटे-मोटे काम तक; एक स्त्री ने तो अंतरिक्ष में जाकर भी बताया है—वह इस बात की खबर है कि स्त्रियां करीब-करीब सब काम कर सकती हैं। कुछ काम होंगे जो एकदम Muscular हैं, अब तो नहीं रह गये; क्योंकि मसल का काम सब मशीन करने लगी हैं। वह पुराना जमाना गया—किसी के साथ लड़ने जाना नहीं पड़ता; और गामा वगैरह बनना सब बेवकूफी हो गई है। अब तो मसल का काम मशीन ने ले लिया है; इसलिए स्त्री को समान होने का पूरा मौका मिल गया है। मशीन बड़े से बड़ा काम कर देती है—बड़े से बड़ा पत्थर उठा देती है; बड़े से बड़ी गाड़ी को उठा देती है; बड़े से बड़े वजन को धक्का देती है। अब पुरुष को भी धकाना नहीं पड़ता। अब कोई जरूरी नहीं है। अब स्त्री प्रत्येक काम में पुरुष के साथ खड़ी हो सकती है। और जैसे ही स्त्री जीवन के सब पहलुओं में प्रविष्ट कर जायेगी, सभी पहलुओं के वातावरण में बुनियादी फर्क पड़ेगा। और कुछ काम तो ऐसे हैं—अभी यह हैरानी की बात है—ऐसा शायद ही कोई काम बचा है पुरुष के पास, जो स्त्री नहीं कर सकती; लेकिन कुछ काम ऐसे हैं, जो स्त्रियां ही कर सकती हैं और पुरुष नहीं कर सकते। और उन कामों को भी पुरुष पकड़े हुए हैं; जैसे—शिक्षक का काम है। शिक्षक के काम से पुरुषों को हट जाना चाहिये। पुरुष शिक्षक हो ही नहीं सकता। उसका 'डिक्टेटोरियल माइन्ड' इतना ज्यादा है कि वह शिक्षक नहीं हो सकता। वह थोपने की कोशिश करता है—वह जो भी मानता है। उसका आग्रह है कि जो मैं करता हूं वह ठीक है—वह yielding है, वह भूल नहीं सकता। विनम्र नहीं हो सकता। humility नहीं है, humbleness नहीं है। शिक्षक अगर जरा भी थोपने वाला है तो दूसरी तरफ के मस्तिष्क को बुनियादी रूप से

नुकसान पहुंचाता है; और नुकसान पहुंचता है सारी मनुष्य जाति को; क्योंकि शिक्षक कैसे व्यवहार कर रहा है। निश्चित ही, सारी दुनिया में शिक्षक का करीब-करीब सारा काम --करीब-करीब कह रहा हूं—स्त्रियों के हाथ में चला ही जाना चाहिए। यह बिलकुल ही उचित होगा, महत्वपूर्ण होगा; क्योंकि शिक्षा तब एक रूखी-सूखी बात नहीं रह जायगी उसके साथ एक रस और एक पारिवारिक वातावरण जुड़ जायगा और संबंधित हो जायगा। बहुत काम ऐसे हो सकते हैं जो स्त्रियों को पूरी तरह उपलब्ध हो जाने चाहिये और बहुत काम जो स्त्रियां कर सकती हैं उसे सब तरफ से उसके लिये निमंत्रण मिलना चाहिये और वे दिशायें जो हमेशा से अधूरी पड़ी हैं, जिनको कभी छुआ नहीं गया वह खोली जानी चाहिए। उन दिशाओं के दरवाजे तोड़े जाने चाहिये ताकि एक और तरह की चेतना स्त्री में आये। चेतना स्त्री की भावना बिलकुल और तरह की है। उसमें कुछ diametrically opposite कुछ बुनियादी रूप से उल्टे तत्व हैं। वह ज्यादा Intutive है—Intellectual नहीं है। वह बहुत बुद्धि और तर्क की नहीं है, ज्यादा अंतर अनुभूति की है। पुरुष अंतर अनुभूति से शून्य हो गया है, बिलकुल शून्य है। स्त्रियां अगर सब दिशाओं में फैल जायं और जीवन घरों में बंद न रह जाये—क्योंकि घरों का काम इतना उबाने वाला है, इतना boring है कि उसे तो मशीन के हाथ में धीरे-धीरे छोड़ देना चाहिये। आदमी को करने को नहीं न स्त्रियों को, न पुरुषों को। रोज सुबह वही काम, रोज दोपहर वही काम, रोज सांझ वही काम। एक स्त्री चालीस-पचास वर्ष तक एक मशीन की तरह सुबह से शाम घूमती रहती है और वही काम करती रहती है। और इसका परिणाम क्या होता है? इसका परिणाम है कि मनुष्य के पूरे जीवन में विष घुल जाता है। एक स्त्री जब चौबीस घंटे उबाने वाला काम करती है—रोज बरतन मलती है, वही बरतन, वही मलना, वही रोटी, वही खाना, वही उठना, वही कपड़े धोना, वही बिस्तर लगाना, रोज एक चक्कर में सारा काम चलता है। थोड़े दिनों में वह इन सबसे ऊब जाती है; लेकिन करना पड़ता है। और जिस काम से कोई ऊब गया हो और करना पड़े तो उसका बदला किसी न किसी से लेगी। इसलिये स्त्रियां हर पुरुष से हर तरह का बदला ले रही हैं। पुरुष घर आया कि स्त्री तैयार है टूट पड़ने के लिये। इसलिये पुरुष घर के बाहर-बाहर घूमते फिरते हैं। क्लब बनाते हैं, सिनेमा जाते हैं, पचीस उपाय खोजते हैं—घर से बचने की सारी कोशिश करते हैं। बारह बज जाते तब घर पहुंचते हैं।

मैं शिक्षक था। तो जिस यूनिवर्सिटी में शिक्षक था, मैं हैरान हुआ। क्लास मुश्किल से एक बजे शुरू होती थी; लेकिन मैं देखता था, प्रोफेसर्स

ग्यारह बजे आके कॉमन रूम में बैठ जाते थे। युनिवर्सिटी क्लासिस चार बजे खत्म हो जातीं, मैं देखता कि पांच-साढ़े पांच बजे तक वे वहीं जमे रहते थे। मैंने उनसे पूछा—बात क्या है ? इतने जल्दी क्यों आते हो, इतनी देर से क्यों लौटते हो ? उन्होंने कहा, जितनी देर करके बाहर रह जायँ उतनी ही शांति समझना चाहिये। घर पहुंचे कि लड़ाई तैयार है। और उन सारे पुरुषों को यह ख्याल आता है कि स्त्रियों में कुछ गड़बड़ है। स्त्रियां कष्ट दे रही हैं ? नहीं स्त्रियों का सारा काम Boredom का है। वे इतनी ऊब जाती हैं कि उसका बदला किससे लें। और आपके लिये वे ऊब रही हैं। आपका ही सारा काम कर रही हैं; तो निश्चित ही आपसे बदला लिया जाने वाला है। अपने बच्चों को पीट रही हैं, उनसे बदला लिया जानेवाला है। पतियों से लड़ रही हैं, उनसे बदला ले सकती हैं। और फिर एक Vicious Circle शुरू होता है, जिसमें सब कलह और सब दुःख हो जाता है।

नहीं, स्त्रियों को—जो भी काम घरों में कर रही हैं—अब वैज्ञानिक सुविधायें उपलब्ध हो जाने पर वह सारा काम धीरे-धीरे यांत्रिक हाथ में चला जाना चाहिये। और स्त्रियां बाहर आयें और निश्चित ही जितना वे बाहर आयेंगी उतना उनका मन विकसित होने का उपाय पायेगा। जितने बन्द घेरे में कोई जिये उतना छोटा मन, उतनी छोटी बुद्धि, उतनी छोटी समझ हो जाती है। हम स्त्रियों को कहां जिलाते रहे ? बन्द घरों में। अब तो थोड़ी बहुत खिड़कियां हो गई हैं; नहीं तो पुरुष खिड़कियां-विड़कियाँ नहीं होने देता। खिड़की से कोई देख नहीं सकता था उसकी पत्नी को। पत्नी भी खिड़की के बाहर अब देख सकती है और ऊबी हुई पत्नी देख ही सकती है। पड़ौस के ऊबे हुए लोग भी देख सकते हैं। पहले खिड़कियां भी नहीं थीं, स्त्रियों के ऊपर हमने काले कपड़े भी लादे हुए थे—चेहरा भी नहीं देखने देते थे।

तुर्की में कमाल जब हुकूमत में आया तो उसने पहला नियम बनाया कि आज से बुरका ओढ़ना सबसे बड़ा अपराध है; और कोई स्त्री बुरका ओढ़े सड़क पर दिखाई नहीं पड़ेगी। तो जबरदस्ती बुरके छीनने पड़े, क्योंकि स्त्रियां भी डरती थीं बुरका छीनने में। और जब बुरके छीने गये तो लाखों स्त्रियों के चेहरे देखकर लोग हैरान हो गये। पतियों ने भी अपनी पत्नी के चेहरे रोशनी में नहीं देखे थे।

रोशनी में स्त्री देखने के बावत बड़ा विरोध रहा है, समझदार लोग बड़ा इंकार करते रहे हैं। चेहरे पीले पड़ गये थे; क्योंकि घर की बन्द कोठरियों में जहां न हवा जाती है, न सूरज की किरणें जाती हैं वहां वे बन्द थीं—

जानवरों की तरह, पशुओं की तरह हमने उन्हें अलग काट रखा था—उनका पता नहीं चलता था। स्त्री का आज भी कुछ मुल्कों में पता नहीं चलता—कुछ समाजों में कि स्त्रियां भी हैं। अगर चांद से कोई आदमी उनके, किसी के घर में और बैठकखाने में जाय तो पता नहीं चलेगा कि घर में स्त्रियां भी हैं। स्त्रियां कहीं छिपी हैं दूर कोने में। उनके किचन, उनके दिन-भर जीने की जगह को आप देखें तो घबड़ा जायेंगे। अंधेरा, धुआँ, रोशनी नहीं, हवा नहीं। और जब बाहर रोशनी-हवा में निकलें तो बुरके हैं, पर्दे हैं, सब तरह से ढंकी हुई हैं स्त्रियां—सब तरफ से बन्द हैं। घर में भी कोठरियों के साथ चल रही हैं, सड़क पर भी वे कोठरी में ही बन्द हैं। स्वभावतः इसका परिणाम उनकी चेतना पर पड़ा होगा, मन पर पड़ा होगा, बुद्धि पर पड़ा होगा, शरीर पर पड़ा होगा और यही स्त्रियां मनुष्य को जन्म देंगी, मनुष्य के जीवन को आगे बढ़ायेंगी, तो निश्चित ही इसका सारा परिणाम मनुष्यता पर पड़नेवाला है।

लेकिन पुरुष डरता है स्त्रियों को बाहर लाने में। डर उसके बहुत गहरे हैं। सबसे बड़ा डर तो उसे मालकियत का डर है; क्योंकि पुरुष ने एक मालकियत बनाकर रखी है और वह मालकियत टूट सकती है। स्त्रियां बाहर आयें तो मालकियत टूट सकती है। स्त्रियां बाहर आयेंगी तो और पुरुष भी परमात्मा जैसे लग सकते हैं—अपने पुरुष को छोड़ के। वह डर की बात है। वह घबराने की बात है; इसलिये उन्हें बन्द ही रखना जरूरी है। लेकिन इतनी बंद, इतनी Jealous, इतनी ईर्ष्यालु जो व्यवस्था है, वह हिंसक हो ही जायेगी। वह घबड़ाने वाली हो ही जायेगी। और इसके परिणाम में, अगर हम मनुष्य के मन को थोड़ा खोजें, उसके रोगों को खोजें स्त्री या पुरुष के, तो हम हैरान हो जायेंगे। १०० में से ७५ मानसिक रोग, किसी न किसी Sexual Jealousy से—कामुक ईर्ष्या से जुड़े हुए हैं! और यह—हमने जो व्यवस्था बनायी है—उसमें होना बिलकुल अनिवार्य मालूम पड़ता है। यह सारा तोड़ देना आवश्यक है।

पहली बात मैंने कही, स्त्री की आर्थिक व्यवस्था उसके हाथ में होना चाहिये। और अगर घर में भी स्त्री काम करे तो उसके काम का मूल्यांकन होना चाहिये। वह निर्मूल्य नहीं हो जाना चाहिये। एक आदमी जूते बना रहा है तो ३०० रुपये महीने की हैसियत है उसकी आकर घर में। पर उसकी स्त्री चौबीस घंटे काम कर रही हो, उसका कोई आर्थिक मूल्याँकन नहीं है, वह कितना आर्थिक काम कर रही है। ऐसा लगता है कि वह कुछ भी नहीं कर रही है। पुरुष कहता है—सब हम कर रहे हैं, हम तुम्हें पाल रहे हैं, हम तुम्हें पालने वाले हैं। और उससे ज्यादा काम, काम नहीं है जो स्त्री किये चली जा

रही है। अगर स्त्री घर में भी काम करती है तो उसका आर्थिक मूल्यांकन होना चाहिये। अगर बाहर लायें स्त्री को हम तो बड़ा सुखद होगा। काम बढ़े, उसकी बुद्धि बढ़े, उसका विकास बढ़े। निश्चित ही बाहर लाते ही हमें अपने परिवार का ढांचा बदलना पड़ेगा—परिवार की व्यवस्था बदलना पड़ेगी—पुराने ढंग बहुत से बदल देने पड़ेंगे। स्त्री-पुरुष करीब आयेंगे तो ढंग हमें नये करने पड़ेंगे; लेकिन यह ढंग नये किये जाने अशुभ नहीं है—वे शुभ होंगे, वे अत्यन्त शुभ होंगे।

दूसरी बात : निरंतर जिन देशों ने भी, जिन समाजों ने भी स्त्री को नीचा किया है, उन देशों और समाजों में स्त्री को नीचा करने का एक बुनियादी कारण उस देश के साधु-संत-महात्मा रहे हैं। वे समझाते हैं कि स्त्री नर्क का द्वार है। असल में साधु-संत स्त्री से बहुत डरे हुए लोग होते हैं। स्त्री से उन्हें बहुत डर लगता है; क्योंकि वे ही उनको भगवान से भी ज्यादा ताकतवर मालूम पड़ती हैं—खींच सकती हैं अपनी तरफ। वे उसकी वजह से इतने घबड़ाये रहते हैं कि रात-दिन स्त्री के ही सपने देखते हैं; और उसको गालियां देते हैं—नर्क का द्वार बताते हैं। **आपको नहीं, वे अपने को समझा रहे हैं कि स्त्री नर्क का द्वार है, सावधान! बचना! स्त्री की तरफ देखना भी मत। इन घबराये हुए, भागे हुए, escapist, पलायनवादी लोगों ने स्त्री को समझने, स्त्री को समादृत होने, सम्मानित होने, साथ खड़े होने का मौका नहीं दिया।**

मैं अभी बम्बई में था कुछ दिन पहले। एक मित्र ने मुझे आकर खबर दी कि एक बहुत बड़े संन्यासी वहां प्रवचन कर रहे हैं। आपने भी उनके प्रवचन सुने होंगे। नाम तो सुना ही होगा। वे प्रवचन कर रहे हैं। भागवत की कथा कह रहे हैं या कुछ कह रहे हैं। और स्त्री नहीं छू सकती उन्हें। एक स्त्री अजनबी आई, उसने उनके पैर छू लिये, तो महाराज भारी कष्ट में पड़ गये हैं—अपवित्र हो गये हैं। उन्होंने सात दिन का उपवास किया है, शुद्धि के लिये। तो जहां दस-पंद्रह हजार स्त्रियां पहुंचती थीं वहाँ सात दिन के उपवास के कारण एक लाख स्त्रियाँ इकट्ठी होने लगीं? कि यह आदमी असली साधु है। स्त्रियाँ भी यही सोचती हैं कि जो उनके छूने से अपवित्र हो जाय वह असली साधु है। हमने उनको समझाया हुआ है, नहीं तो वहाँ एक स्त्री नहीं जाती; क्योंकि स्त्री के लिए यह भारी अपमान की बात है।

लेकिन अपमान का ख्याल ही मिट गया। लम्बी गुलामी अपमान के ख्याल मिटा देती है। लाख स्त्रियाँ वहाँ इकट्ठी हो गई हैं। सारी बम्बई में एक चर्चा है कि आदमी है असली साधु; क्योंकि वह स्त्री के छूने से अपवित्र हो गया,

सात दिन का उपवास कर रहा है। उन महाराज से किसी ने पूछना चाहिये—पैदा किससे हुए थे? हड्डी, मांस, मज्जा किससे बना है? वह सब स्त्री से लेकर आये हैं और अब अपवित्र होते हैं स्त्री छूने से!! हद की कमजोर साधुता है, जो स्त्री के छूने से अपवित्र हो जाती है। लेकिन इन्हीं कारणों से लोगों की लम्बी परंपरा ने स्त्रियों को दीन-हीन और नीचा बनाया है; और मजा यह है कि जो दीन-हीनता की लम्बी परंपरा है, इस परम्परा को स्त्रियां ही पूरी तरह बल देने में अग्रणी हैं। कभी के मंदिर मिट जाते और कभी के गिरजे समाप्त हो जाते—स्त्रियां ही पाल-पोस रही हैं मंदिरों, गिरजों, साधु-संतों, महंतों को। चार स्त्रियां दिखाई पड़ेंगी एक साधु के पास, तो कहीं एक पुरुष दिखाई पड़ेगा। वह पुरुष भी अपनी पत्नी के पीछे बेचारा आया हुआ होगा। तीसरी बात मैं आपसे यह कहना चाहता हूं, जब तक हम स्त्री-पुरुष के बीच के यह अपमान जनक फासले—यह अपमान जनक दूरियां कि छूने से कोई अपवित्र हो जाय—नहीं तोड़ देते हैं, तब तक शायद स्त्री को समान हक भी नहीं दे सकते।

Co-education शुरू हुई है; सैकड़ों विश्वविद्यालय, महाविद्यालय co-education दे रहे हैं—लड़कियां और लड़के साथ पढ़ रहे हैं; लेकिन बड़ी अजीब-सी हालत दिखायी पड़ती है। लड़के एक तरफ बैठे हुए हैं, लड़कियां दूसरी तरफ बैठी हुई हैं, बीच में पुलिस वाले की तरह प्रोफेसर खड़ा हुआ है। यह कोई मतलब है! कितना अशोभन है यह! uncultured है! co-education का एक ही अर्थ हो सकता है कि कालेज या विश्वविद्यालय स्त्री-पुरुष में कोई फर्क नहीं करे—co-education का एक ही मतलब हो सकता है कि कालेज की दृष्टि में sex differences का कोई सवाल नहीं है। जो लड़की जहां आये, वहां बैठ जाय—जहां चाहे वहां बैठ जाय।

आखिरी बात और फिर मैं अपनी चर्चा पूरी करूंगा। एक बात आखिरी और यह है कि अगर एक बेहतर दुनिया बनानी हो तो स्त्री-पुरुष के समस्त फासले गिरा देने हैं। भिन्नता बचेगी, लेकिन समान तल पर दोनों को खड़ा कर देना है। और ऐसा इन्तजाम करना है कि स्त्री को स्त्री होने की Consciousness और पुरुष को पुरुष होने की Consciousness चौबीस घंटे न घेरे रहे—यह पता भी नहीं चलना चाहिये—यह चौबीस घंटे ख्याल भी नहीं होना चाहिये। अभी तो हम इतने लोग यहाँ बैठे हैं यदि एक स्त्री आये तो सारे लोगों को ख्याल हो जाता है, स्त्री आ गई। स्त्री को भी पूरा ख्याल है कि पुरुष भी यहां बैठे हुए हैं। यह अशिष्टता है, unculturedness है, असंस्कृति है, असभ्यता है—यह एक बोध नहीं होना चाहिये—यह बोध

गिरने चाहिएँ। अगर यह गिर सकें तो हम एक अच्छे समाज का निर्माण कर सकते हैं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुग्रहीत हूं, और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

——()——

ध्यान के अनुभव

स्वामी अगेह भारती : "लाल प्रताप, तुम लगभग तीन माह से ध्यान के प्रयोग कर रहे हो। जरूर कुछ बदलाहट तो अनुभव करते होंगे ?"

श्री लाल प्रताप सिंह : "बदलाहट तो मैं क्या बताऊं! बस इतना ही कह सकता हूं कि ध्यान में जो कुछ होता है वह सब अद्भुत है। और मेरी स्थिति यह है कि अब मैं विचारों के मध्य में, भावों के मध्य में खड़ा हो पाता हूं, उन्हें देख पाता हूं, निरख पाता हूं। अनजाने कुछ नहीं होता प्रायः। जहां मूर्च्छा थी, वहां कुछ जाग रहा है। विचारों में, भावों में (क्रोधादि में) बहना नहीं हो पाता अब; आये और पकड़े गये, अधिकांश। — और क्या कहूं, बड़े आनन्द में हूं। आपका अनुग्रह भी मुझ पर अपार है जिसने प्रभु से मिलाया और प्रभु की ध्यान-पद्धति से परिचित कराया। सच यह है कि अब मैं सब कुछ के प्रति, सब समय अनुग्रह से, प्रेम से भरा अनुभव करता हूं।"

(नोट : उपर्युक्त पत्र का अंश हमने स्वामी अगेह भारती के छोटे भाई श्री लाल प्रतापसिंह, ग्राम-भुड़हा जिला प्रतापगढ़ (उ. प्र.), के पत्र से लिया है जिसे उन्होंने अपने बड़े भाई को लिखा।)

o o o

सत्य को पाने के लिए क्या अपने प्राण दे सकते हो ? जो इतना मूल्य चुकाने को राजी होते हैं, सत्य उन्हें निर्मूल्य मिल जाता है।

प्रभु को जानना है, तो स्वयं को जीतो। स्वयं से ही जो पराजित हैं, प्रभु के राज्य की विजय उनके लिए नहीं है।

आबू साधना शिविर (२):
बस तीत ही तीत

—स्वामी अगेह भारती

'माउण्ट आबू' पर पहला शिविर अप्रेल में लगा था। अगेह भारती को भली भांति याद है कि अप्रेल में शिविर-समाप्ति पर आबू रोड रेल्वे स्टेशन पर जब बस पहुंची, तो उसने 'माउण्ट आबू' की ओर मुड़कर उसे प्रणाम किया था, जहां उसे इतना आनंद मिला और मन ही मन कहा मेरे प्यारे माउण्ट! क्या पता फिर तुझसे कभी भेंट हो या नहीं? यह कहते-कहते अगेह भारती की आँखें भर आई थीं। तब सोचा भी न था कि सितंबर में फिर माउण्ट पर ही भगवान श्री रजनीश का शिविर लगेगा और यह भी तो पक्का नहीं था कि सितंबर तक अगेह जीता ही रहेगा; मर भी तो सकता था। पर ऐसा हुआ कि २५ सितंबर से २ अक्टूबर फिर माउण्ट आबू पर 'प्रभु' की करुणा बरसी और मेरे भाग्य कि मैं उस करुणा को पीने के लिए जिन्दा था।

OOO

बम्बई से साधु आनन्द संगम ने लिखा है कि वे माउण्ट आबू शिविर की रिपोर्ताज पढ़ने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्यारे आनंद संगम जी, मुझसे अब 'ना' तो संभव नहीं रह गया है, अतः कलम तो उठा लिया हूं पर ऐसा लगता है कि भीतर जो भाव थे, वे भी सब विलीन होते जा रहे हैं। अतः अब भावपूर्ण होना तो शायद संभव नहीं है। हां, अखबारी समाचार जैसा, जितना स्मरण कर पाऊंगा, सहर्ष लिखने को राजी हूं।

अस्तु :—

इस बार ५०० शिविरार्थी थे। प्रातः भगवान श्री की अमृतवाणी सुनने को मिलती थी—८॥ से ६॥; ६॥ से १०॥ ध्यान। अपरान्ह २॥ से ३॥ प्रभु जी से मिलने का समय: संन्यास ग्रहण करने वालों को व अन्य प्रेमियों को। ४ से ४॥—भजन-कीर्तन व ४॥ से ५ मौन। रात्रि ८ से ६ पुनः भगवान श्री अमृतवाणी का लाभ। ६ से १० पुनः ध्यान। कार्यक्रम इस प्रकार थे, और तो वहां क्या होता था कहा नहीं जा सकता। वह तो सिर्फ देखा व महसूस किया जा सकता था।

OOO

यहां से इस बार भगवान श्री ने एक नये तरह का संन्यास देना शुरू किया। उन्होंने कहा कि जिन्हें भगवा वस्त्र पहनने की अभी हिम्मत न हो, वे सफेद कपड़े पहन कर माला ले सकते हैं। उन्हें 'साधु' व 'साध्वी' कहा जायगा। फिर जब उन्हें लगे कि अब वे भगवा वस्त्र पहन सकते हैं तब उन्हें 'स्वामी' व 'मा' नाम दिया जा सकेगा। और अंततः तो 'स्वामी' व 'मा' हो ही जाना है हर 'साधु' 'साध्वी' को!

000

इस बार ध्यान के समय २० से २५ लोग तक नग्न हो जाते थे। एक दिन भगवान श्री ने कहा कि जिसे भी लगे कि वस्त्र उतार फेकना है, वह उतार फेंके। अगेह भारती को अण्डर वियर रोज बाधा देता था, अतः आज उसने पहले चरण में चड्डी उतार फेंकी; लेकिन उसने पाया कि उसका 'ध्यान' गड़बड़ हो रहा है; क्योंकि सारा ख्याल यहीं इकट्ठा हो गया कि मैं नग्न हूं, मैं नग्न हूं। 'ध्यान' में ताकत ही नहीं लगती थी। अतः दूसरे चरण में झट से उसने थोड़ी-सी आँख खोली और अपनी चड्डी उठाकर पहन ली; फिर जमकर ध्यान हुआ।

000

इस बार सात दिन में १६५ मित्रों ने संन्यास ग्रहण किया जिनमें दो जज भी हैं। और एक सिविल जज जयपुर के, जो आजोल शिविर में आये थे, मुछाला शिविर जैसा समझकर आये थे। वहां उछल-कूद व मुक्त हास्य-गान-रोदन-नृत्य देखकर बेचारे घबड़ा गये थे। कह रहे थे कि यह क्या पागलपन है! मैं जयपुर पहुंचकर रजनीश जी को लम्बा पत्र लिखूंगा और इस सबका विरोध करूंगा। उनकी पत्नी भी साथ थीं। वे भी काफी गुस्से में थीं। इस बार 'आबू शिविर' में उन्हें—पति-पत्नि को, पुनः देखा तो बड़ा आनंदित हुआ। इतना ही नहीं, फिर तो एक दिन मैंने देखा कि जज सा. की पत्नी ने संन्यास भी ग्रहण किया है और अगेह भारती को जयपुर के लिए आमंत्रण भी दे रही हैं कि जब भी भगवान श्री आवें—वह भी आएं। अगेह भारती ने 'हां' कह दिया है; हालाँकि उनका उसे नाम-पता कुछ नहीं मालूम है।

000

बाबई (म. प्र.) के श्री बाबूलाल जी डेरिया ने भी संन्यास लिया। आपने अनेकबार गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया है व आजादी के सभी आंदोलनों में आपने सक्रिय भाग लिया। जेल यात्राएं भी बहुतेरी की हैं।

माउण्ट आबू के भी ६-७ मित्रों ने संन्यास लिया जिनमें एक पुलिस इन्सपेक्टर व दो पुलिस के सिपाही भी हैं।

000

एक बाहरी संन्यासी कोई शिविर में आए थे। एक दिन किसी ने कहा यह क्या पागलपन है ? उस संन्यासी ने कहा "प्यारे यह एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक घटना है। इसे साधारण बात मत समझना। ज्ञान-योग, भक्ति-योग, हठ-योग, अनाहत-योग और जाने क्या-क्या गिना ले गये कि सब अलग-अलग योग हैं, हरएक का अलग-अलग पूरा विज्ञान एवं प्रशिक्षण है। एक-एक की अलग-अलग साधना होती है। पर यहां जो हो रहा है वह अद्भुत है और दुनिया में उसके पहले कभी नहीं हुआ है। एक साथ सभी योग घटित हो रहे हैं। किसी को भक्ति-योग घटित हो रहा है, किसी को हठ-योग, किसी को अनाहत-योग। यहां तक कि जिन्हें हो रहा है उन्हें भी पता नहीं कि क्या हो रहा है; पर ऐसा हो रहा है। सब कुछ एक साथ। ऐसा कभी हुआ नहीं था।" मैं चुपचाप इस बात का पूरा मजा पी गया।

000

दिल्ली की एक मा आनंद विभूति से मिलना हुआ। भगवान श्री का हर प्रेमी बेजोड़ है, हर एक में कुछ न कुछ अनोखापन है। पर जो सामने पड़ जाय। इस मा आनंद विभूति को क्या कहूं। सिर्फ एक दिन भगवान श्री से क्षण भर को मिलने गयी थी। साष्टांग प्रणाम किया था उसने। मैं भी वहां था। भगवान श्री भोजन पर गए तो मैंने कहा मिल लीं ? उसने कहा—एक बार सिर भगवान श्री के चरणों में रख लिया, अब छह माह आनंद से जी सकती हूं।

000

एक बंबई के मित्र ने एक दिन मुझे बताया कि किसी ने भगवान श्री से पूछा था कि आप अब मन्दिर व तिलक, टीके पर क्यों बोल रहे हैं जबकि पहले विरोध करते थे ? भगवान श्री ने क्या कहा, मालूम है ? उन्होंने कहा : "मैं सोचता था कोई मेरे विरोध में खड़ा होकर मंदिर, तिलक, टीके पर बोलेगा पर ऐसा नहीं हुआ। सारे देश में एक भी ऐसा संन्यासी न हुआ जो इन सब लुप्त प्राय मूल्यों-अर्थों को प्रगट और प्रतिष्ठापित करता। अतः मुझको दोहरी मेहनत करनी पड़ रही है।"

000

आबू के प्रवचनों के दौरान एक दिन प्रभु जी ने भारत के मनोवैज्ञानिक केरेक्टर की चर्चा की तथा एक कमजोर पक्ष की ओर संकेत किया। वह यही

कि भारत ने कभी आक्रमण नहीं किया—आक्रमण नहीं कर सकता; इसलिए भारत ने बहुत कुछ खोया भी जो कि दूसरे देशों ने नहीं खोया। परन्तु मुझे दिखता है कि अंततः भारत ही दुनिया को कुछ देने में समर्थ होगा।

यह वचन सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए और आँखों में आँसू भर आये कि कितने बेचारे उन्हें (भगवान श्री को) भारतीय संस्कृति का दुश्मन समझते हैं! मुझे तो लगता है कि भारत एक बार फिर अपने पुराने गौरव व गरिमा को छूने जा रहा है।

000

संध्या अमृतसर के श्री प्रेमसिंह व दोपहरी में पूना की सुश्री साधना के भजन भी लोगों को पागल होने में मदद पहुंचाते थे।

मा योग मुक्ता व उनकी १६ वर्षीय लड़की (उनने भी संन्यास लिया है) व कपिल, कुसुम, जितेन्द्र के साथ अगेह सर्किट हाऊस में नाश्ता ले रहा था। कपिल ने मुक्ता जी से कहा: "भाषा न समझ पाने के कारण आप कम आनंद ले पा रही होंगी। मुक्ता जी ने मुस्कराते हुए मुक्त भाव से कहा: "I don't follow Hindi, but I can hear him. अर्थात मैं हिन्दी तो नहीं समझती पर उन्हें सुन पाती हूं।"

पेरिस की मा योग साधना चौबीस घण्टे केमरा लिए नाचती रहती व चित्र लेती रहती व कभी भी हू-हू की आवाज निकालने लगती। थीं बूढ़ी पर ८–१० साल की बच्ची-सी सरल।

000

मुल्ला नसरुद्दीन पर विशेष कृपा थी भगवान श्री की इस बार। हर भाषण में चार-छह कथाएं मुल्ला नसरुद्दीन की। एक दिन अगेह भारती ने पूछा भी कि क्या मुल्ला नसरुद्दीन कभी हुआ था। कुछ लोग कहते हैं—कोई नहीं हुआ? भगवान श्री ने बताया कि वह हुआ था और बड़ा अद्भुत व्यक्ति था। उसकी बातों में खास बात यह थी कि वह खुद बेवकूफ का 'रोल' अदा करता था पर बातें बहुत पते की कहा करता था। मैंने पूछा: "क्या ये उसकी कही या लिखी हैं इतनी सारी कहानियां?"

भगवान श्री ने कहा: "नहीं, मुल्ला नसरुद्दीन था तो। बहुत-सी कहानियां भी हैं उसकी। पर मैं जो कह रहा हूं यह तो मैं ही कह रहा हूं। असल में मुल्ला नसरुद्दीन का एक केरेक्टर क्रियेट कर रहा हूं।"

मुल्ला नसरुद्दीन की कहानियों की किताब जब छपेगी, एक अर्थ में अभी तक की छपी सभी किताबों को मात कर जायगी।

000

मंच पर भगवान श्री का जिस समय आगमन होता था, वह दृश्य बड़ा दर्शनीय होता था। जाते समय भी उनकी कार मुश्किल से सरक पाती थी—"रजनीश आये, आनंद लाये" के मधुर गान से सारा वातावरण भर जाता था और प्रेमियों की पुलक, थिरक व नृत्यमय मुद्राओं से भगवान श्री की कार का मार्ग रुक जाता था। एक दिन तो पोरबन्दर के स्वामी अनन्त इतनी मस्ती में थे कि उन्होंने भगवान की कार के सामने से ऐसी छलांग लगाई कि कार के ऊपर छत पर जा पहुंचे और वहां से सरके तो पीछे जा निकले। वह दृश्य मात्र देखा जा सकता था, वर्णन तो असंभव है उसका। किस बिजली की फुर्ती से छलांग मारी थी उसने।

ooo

शिवरार्थी होटलों में ठहरे थे। इस बार १५-१६ टेण्ट्स का प्रबन्ध था। जो २४ घण्टे ध्यान में रहने का मजा लेना चाहते थे वे टेण्टों में रहते थे।

ooo

एक दिन एक अखबार वाले मित्र ने अगेह भारती से कहा: "मैं आपका एक चित्र लेना चाहता हूं व इण्टरव्यू।" अगेह भारती ने कहा: "मेरा चित्र लेंगे और मेरा इन्टरव्यू लेंगे इससे अच्छी बात क्या हो सकती है?" पर वे न कभी चित्र ही लिए, न इन्टरव्यू ही। मुझे भी इसका ख्याल तब आया जब अंतिम दिन वे बस स्टेण्ड पर दिखे। मैंने मन ही मन सोचा कहीं बेचारा ढूंढ़ता न रहा हो मुझको। मैं कुसुम, कपिल की गाड़ी में सर्किट हाउस भग जाया करता था न! वह पत्रकार मित्र मेरी ओर बढ़ने लगा और मुझे लगा कि अभी वह यही कहेगा कि आपका पता क्यों नहीं था जनाब मैंने कितना ढूंढ़ा। पर वे मित्र आए तो कहने लगे: "क्षमा करिएगा, ध्यान में इतना आनंद आया कि मुझे सब कुछ भूल गया। केमरा व इण्टरव्यू भी भूल गया जब कि इस बार शिविर में आपका इन्टरव्यू लेना एक मुख्य बात थी।" मेरी जान में जान आई। मैंने कहा: कोई बात नहीं, फिर मिलेंगे कभी।

ooo

तीन दिन सामूहिक 'प्रभु-कृपा-चिकित्साके' प्रयोग हुए। सैकड़ों रोगियों पर एक साथ।

रात्रि त्राटक ध्यान के समय भगवान श्री का रूप!!! सच! में इस जमीन पर नहीं, कहीं और ही हुआ करता था।

ooo

भगवान श्री के चेहरे का तेज अवर्ण्य था— उस क्षण जब एक संध्या भाषण के दौरान उन्होंने कहा कि कल ब्रह्मकुमारी विश्वविद्यालय के मित्र आये

थे कि हमारे यहां चलिए योग का म्यूजियम देखने। उन्होंने कहा, 'योग' **अभी हाल नहीं मर गया है कि उसे म्यूजिम में रखा जाये।**

ज्ञातव्य है कि ब्रह्मकुमारी विश्वविद्यालय के मित्र भगवान श्री के प्रवचनों में नित्य आते थे और उस समय भी वहां मीटिंग में उपस्थित थे।

OOO

प्रेमी कहते होंगे—"दुनिया भर की बकवासें कर रहा है। भगवान श्री की चर्चा नहीं करता ज्यादा से ज्यादा। ध्यान-प्रयोगों की चर्चा नहीं करता।" प्रेमियों से मैं हार जाता हूं। न उन्हें जवाब दे पाता हूं : न उनसे बच ही पाता हूं। पर भगवान श्री की लीला अपरम्पार है। कहीं न कहीं से जवाब भेज ही देता है। आज बंबई के भाई **ब्रह्मदत्त** का पत्र आया है। उसी में की कुछ पंक्तियां ज्यों की त्यों यहाँ लिखकर आप सबसे नमस्कार करना चाहता हूं। मेरे पास, और कोई जवाब नहीं है। उन्होंने जो मुझे लिखा है वही ज्यों का त्यों मैं आपके लिए लिख दे रहा हूं—

"भाई, मैं तो जब उनसे मिलता हूं, मेरी खोपड़ी 'आउट-आफ-आर्डर' हो जाती है। प्रत्येक भेंट एक संस्मरण है; पर मेरे लिए आपके युक्रांद अथवा युक्रांद के पाठकों के लिए उसे पेश कर सकना कठिन है···
—वह सबका सब वर्णनातीत है,
तर्कातीत, कल्पनातीत और बस तीत ही तीत !"

—:○∘○∘○:—

प्रभु अपने अमृत द्वार उन्हीं के लिए खोलता है, जो स्वयं के प्रभु होते हैं।

सत्य की साधना सतत है। श्वास श्वास जिसकी साधना बन जाती है, वही उसे पाने का अधिकारी होता है।

OOO

सूचना :– प्रेमी एवं पाठकों से निवेदन है कि आचार्य श्री से संबंधित संस्मरण व लेख तथा आचार्य श्री द्वारा लिखे गए पत्र हमें प्रकाशन हेतु पहुंचायें। कृपया अपनी रचना-सामग्री साफ अक्षरों में, पृष्ठ के एक ओर, डबल स्पेस में और हाशिया देकर ही भेजें, ताकि प्रकाशन में असुविधा न हो।

संपादक : युक्रांद, ७६०, राइट-टाउन, जबलपुर।

प्रेमी पाठकों के पत्र भगवान श्री के नाम

हे ! हिम्मत वाले महामानव,

सादर वन्दन ।

आपकी खुली दिलेरी को सौ-सौ बार वन्दन !!

अभी-अभी 'संभोग से समाधि की ओर' नामक अज्ञानान्धकार को दूर करने वाली पुस्तक पढ़ी । सिर्फ पढ़ी ही नहीं है; कहीं कुछ क्षण तक सोचा भी है ।

अहा ! ... कितनी सत्य, साफ, सरल बात आपने समाज के सामने रखी है इसकी कोई मिसाल नहीं ।

कुछ बातें मेरी पूरी समझ में नहीं आईं—कुछ में मैं व्यक्तिगत तौर पर सहमत भी न होऊं—

पर इतना अवश्य है कि **इतना साफ सत्य सदियों से किसी ने भी नहीं कहा ।**

मेरा तो ऐसा विचार है कि यह पुस्तक और आपकी पुस्तकें एक बार के पढ़ने मात्र से ही नहीं समझ में आतीं—पर अधिक बार पढ़ने तथा कुछ विशेष चिन्तन करने से ही प्रकाश मिलेगा ।

पुन: प्रणाम स्वीकार करें । आपका—

रामचन्द दम्माणी

000 (४७, खेंगरा पट्टी, कलकत्ता-७)

सर्व के आधार—अधिष्ठान, चराचर में व्याप्त

पूज्य.. ...आप हमेशा साथ हैं ।

'अन्तर्यात्रा' से भीतर की यात्रा हो चुकी । 'साधना-पथ' से साधना हुई ।

'प्रेम है द्वार प्रभु का', 'सत्य की खोज', 'प्रभु की पगडंडियां', 'मै कौन हूं?' 'सत्य का सागर', 'शून्य की नाव'...—ये सब किताबे नहीं हैं; किन्तु प्रगट प्रभु हैं ।

मुझे तो हर पंक्तियों में आपका साक्षात्कार होता है ।

आपके दर्शन के लिए उत्कट हूं ।

आज्ञा मिले तो वेकेशन (छुट्टियों) में आपके पास थोड़े दिन ठहरूं ।

आपके निर्व्याज प्रेम का पान होता है । आप मौजूद हैं—आपके चित्रों में ।

Where ever your picture is, you are present.

...सबको मेरे प्रणाम ! अमीन के प्रणाम.

(डॉ. जे.पी.अमीन, एम. ए. पी. एच. डी. प्रमुख, जीवन जागृति केन्द्र, खंभात)

दो अमृत-पत्र

(भगवान श्री द्वारा मा योग क्रांति (मौनू) को लिखे गए पत्र)

प्यारी मौनू,

प्रेम। जोशु (Joshu) ने पूछा अपने गुरू नानसेन (Nonsen) से: "सत्य का सम्यक् मार्ग क्या है ?"

नानसेन बोला: **"अति-साधारण है मार्ग। दैनंदिन का ही है वह मार्ग। चलते हो जिस पर प्रतिदिन वही है वह मार्ग।"**

जोशु पूछने लगा तब: "क्या मैं उसका अध्ययन कर सकता हूं ?"

नानसेन ने कहा: "नहीं—**क्योंकि जितना ही तुम उसका अध्ययन करोगे उतने ही उससे दूर हो जाओगे। जितना ही सोचोगे उसे—उतनी ही दूर भटकोगे उससे। इधर आया विचार कि उधर खोया मार्ग!**"

स्वभावतः चकित हो जोशु ने कहा: "जब मैं उसका अध्ययन ही नहीं कर सकता हूं तो उसे जानूंगा कैसे ?"

इस पर नानसेन हंसा और चुप हो गया।

थोड़ी देर जोशु ने मौन में प्रतीक्षा की और पुनः प्रार्थना की: "कुछ तो कहें कि वह मार्ग कैसा है ?"

तब नानसेन आकाश की ओर देखने लगा और बोला: "वह मार्ग दृश्य वस्तुओं में से नहीं है—न ही अदृश्य वस्तुओं में से है। वह न ज्ञात की कोटि में आता है, न अज्ञात की। उसे खोजो मत। उसे विचारो मत। और न ही उसे कोई नाम ही दो। **और यदि पाना है स्वयं को उसके ऊपर तो बस स्वयं को खोल लो आकाश की भांति विस्तीर्ण।** (To find yourself on it, open yourself wide as the sky)"

यही है राज— स्वयं को पाने का।
और स्वयं को खोने से गुजरता है यह मार्ग।
मन बनाता है सीमायें।
और आत्मा है असीम—आकाश की भांति असीम।
विचार करता है परिभाषायें।
और प्राण मांगते हैं अनुभूति।
बुद्धि के पास हैं शब्द—कोरे शब्द।
और सत्य है सदा मौन।

बुद्धि चुप हो—शब्द हों शांत, तो मार्ग यहीं है—अभी और यहीं—बस प्रत्येक के पैरों तले ।

और बुद्धि हो मुखर और विचार बुनते हों जाल, तो मार्ग कहीं भी नहीं हैं ।

रजनीश के प्रणाम
२०-३-१९७१

प्यारी मौनू,

प्रेम । जो जानता है उसके लिये परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । अर्थात् सभी कुछ वही है ।

क्षुद्र भी तब विराट है और अणु भी आकाश है ।

बूंद में समाये हैं तब समस्त सागर और नन्हीं-सी किरण में महासूर्यों का आवास है ।

तोझान (Tozan) उनमें से था एक जो कि जानते हैं ।

सुबह ही सुबह तराजू पर तौल रहा था वह कपास ।

और तभी एक शिष्य ने आकर उससे पूछा : "गुरूदेव ! बुद्ध कौन हैं ? क्या हैं ? कहां हैं ? कृपा करें और स्पष्टतः बतायें मुझे ।"

तोझान ने कपास की ओर इशारा किया और कहा : "यहाँ : पांच सेर कपास में ।"

रजनीश के प्रणाम
२०-३-१९७१

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

भगवान श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादक—श्री महीपाल मूल्य ५) वार्षिक

(आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें)

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी० एन० रोड, बम्बई–१

Phone : 264530

युक्रांद की आधार शिलायें

परमात्म-प्रकाश को जनमानस तक, प्रेमी साधकों तक पहुंचाने का युक्रांद के माध्यम से जो आनंद-उत्सव पिछले तीन वर्षों से हो रहा है, उसमें आधार स्तंभ के रूप में जो आर्थिक सहयोग देश के कोने-कोने से हमें अपने प्रेमी आत्मीयजनों से मिला है, उससे हम इस आनंद बोध को गतिमान कर पाने में समर्थ हुए हैं। इस वर्ष के फरवरी अंक तक इस दिशा में १,९७१) रु. की राशि प्राप्त हुई थी, तत्पश्चात् जून ७१ तक १३५) रु. और प्राप्त हुए और इस प्रकार दूसरे वर्ष के अंत तक २,१०६) रु. की राशि प्राप्त हुई।

युक्रांद की इस स्थायी निधि से ही हम इस पावन कार्य की सुगंध को दूर-दिगंत तक हमेशा-हमेशा के लिए ले जा सकने में समर्थ हो रहे हैं।

इस वर्ष भी हमने जून ७१ के अंक के साथ आपको स्थायी-निधि-पत्र प्रेषित किये हैं, आप अपनी कार्य-व्यस्तता के कारण ही हमें अभी तक राशि प्रेषित नहीं कर पाये हैं, अतः आशा है कि आप अपना अंशदान हमें शीघ्र ही प्रेषित कर रहे हैं।

जून ७१ तक प्राप्त हुई राशि की सूचना (फरवरी ७१ के अंक से आगे):

(१)	श्री संतोष वि० दानी, ग्राम : केसरा, जिला : दुर्ग	१५) रु.
(२)	श्री रामनारायण नेमा, गढ़ाकोटा (सागर)	१०) रु.
(३)	श्रीमती रामदुलारी अग्रवाल, C/o मेसर्स देवीदास एंड संस, १४, किशन मार्केट, सिरकीवाला, देहली–६	२१) रु.
(४)	श्री पुरुषोत्तम, C/o बाम्बे फेन्सी स्टोर्स, सिंधी बाजार, उदयपुर (राज.)	५०) रु.
(५)	श्री राज चौरसिया, देहली-१६	२१) रु.
(६)	श्री राजेन्द्र जे. मेहता, किसान चौक, संतोक बेन ब्राह्मण बिल्डिंग, जामनगर (गुज.)	१०) रु.
(७)	श्री अरुणकुमार, २४१, न्यू इंजीनियर्स हॉस्टल, पटना–५	८) रु.
	कुल	१३५) रु.

तुलसी मानस प्रकाशन की उपलब्धियां

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) : ३–००

आधुनिक खेलों, वैज्ञानिक साधनों, जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों के द्वारा आध्यात्म शिक्षा।

२. ज्ञान-साधना : २–००

लोनावाला शिविर में पधारे हुए महापुरुषों के ज्ञान साधना के प्रति संकेत।

३. विज्ञान से ज्ञान : १–००

एक्स-रे इत्यादि आधुनिक उदाहरणों को लेकर आध्यात्मिक विद्या नवयुवकों तक पहुंचाने का सफल प्रयास।

४. वेदान्त-नवनीत : १–५०

सन् १९६४ के अमृतसर के वेदान्त सम्मेलन में पधारे महात्माओं के प्रवचनों का सार।

५. वेदान्त का सरल बोध : २–००

वेदान्त के क्लिष्ट ग्रन्थों के सिद्धांत बड़े ही सरल उदाहरणों में।

६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) : ४–००

ज्ञान की गंभीर बातों को सूत्र तथा चित्र द्वारा प्रस्तुत।

७. आध्यात्मिक डायरी १९७१ ६–००

सचित्र और दार्शनिक सूत्रों से परिपूर्ण दैनंदिनी।

८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिन्दी-इंग्लिश) पाकेट बुक : ६–००

२५० पृष्ठों में रंगीन ब्लैक एंड व्हाइट चित्र इंग्लिश तथा हिन्दी में सूत्रों सहित सर्वसाधारण के लिए आध्यात्मिक ज्ञान।

९. मुमुक्षु : ५–००

आधुनिक मनोरंजक आध्यात्मिक उपन्यास।

१०. मन की शांति (पद्य) : ४–००

अंग्रेजी मूल रचना 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद।

११. हमारी परंपरा : २–००

क्रिकेट और ताश के पत्ते आदि दृष्टांतों द्वारा अध्यात्म की नवयुवकों तक पहुंच।

१२. आराम सुख शाँति और आनन्द : ०–५०
जैसा नाम तैसा गुण ।

१३. अपनी ओर इशारा : १–००
अपनी ओर आने के सूत्र रूप इशारे ।

१४. व्यावहारिक जीवन और परमात्मा : १–००
व्यवहार परमात्ममिलन में बाधक नहीं, इसकी स्पष्टता ।

१५. श्मशान यात्रा : ०–५०
जीवन यात्रा का अंतिम चरण ।

१६. मेरे १०८ गुरु : ३–००
क्षण-क्षण व कण-कण से नूतन ज्ञान ।

१७. सजगता : १–००
पल-पल अविरल वर्तमान में सजग जीवन ।

१८. अविरोध-निरोध और स्वबोध : २–००
अविरोध से मन का निरोध और निरुद्ध मनमें में स्वबोध ।

१९. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन : २–००
वैज्ञानिक दृष्टांतों द्वारा वेदान्त का मनन ।

२०. चिन्ता और निश्चितता : (प्रेस में) २–००
चिन्ता से पार उतरने के सरल सूत्र ।

२१. मन के पार : १–००
विकट सामाजिक धार्मिक और आध्यात्मिक प्रश्नों पर
आचार्य श्री रजनीश के उत्तर ।

२२. घर-घर की समस्या : (प्रेस में) २–००
घरेलू दैनिक विकट समस्याओं का समाधान ।

२३. 'पीस ऑफ माइण्ड' ३–००
अंग्रेजी में सूत्ररूप आध्यात्मिक सरल ज्ञान ।

२४. 'क्वायटर मोमेण्ट्स' २–००
मौन के क्षणों में लिखे सूत्र रूप अंग्रेजी-सूक्त ।

(ग्राहक एवं एजेन्टस् पत्र-व्यवहार करें)

:-: तुलसी–मानस–प्रकाशन :-:

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी

गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई-१०

(साहित्य सूची कवर पृष्ठ २ के आगे)

गीता दर्शन	५-००
प्रेम है द्वार प्रभु का	
संभावनाओं की आहट	६-००

साहित्य प्राप्ति स्थल

(१) जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा. डी. एन. रोड, बम्बई : १ फोन : २६४५३०

(२) मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७

(३) स्वदेशी वस्तु भंडार, जामनगर

(४) आर. अंबानी एंड कंपनी., अपोजिट : जिमखाना, राजकोट

(५) चंद्रकांत पटैल, आसोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रावपुरा बड़ौदा

(६) मोतीलाल बनारसीदास, नेपाली खपरा, वाराणसी

(७) मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना

(८) भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरांगेट, जालंधर

(९) सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद

(१०) बालगोविंद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद

(११) सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर–२

(१२) हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १

(१३) सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर

(१४) श्री आर. के. पुंगलिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना-२

(१५) स्वामी आनन्द वेदांत, जीवन जागृति केन्द्र, घंटाघर, नीमच (म. प्र.)

(१६) श्री हीरालाल कोठारी, दांता भैरू, कुम्हारवाड़ा, उदयपुर (राज.)

युक्रांद

अक्टूबर १९७१

"संन्यास संसार को चुनौती है.

वह स्वतंत्रता की मौलिक घोषणा है.

पल-पल स्वतंत्रता में जीना ही संन्यास है.

संन्यास की सुगंध को संसार तक पहुंचाना है.

इसलिए,

प्रभु के लिए पागल होकर काम में लग जाओ.

पागल होने से कम में नहीं चलेगा.

आह ! लेकिन, प्रभु के लिए पागल होने से बड़ी कोई प्रज्ञा भी तो नहीं है."

—रजनीश के प्रणाम

"स्वीकार हो अज्ञात सागर का यह आमंत्रण—यही प्रार्थना है!"

—स्वामी गोविंद सिद्धार्थ

(श्री जे. डी. लश्करी)

ए टु जेड इण्डस्ट्रियल एस्टेट

लोअर परेल, बंबई : १३

फोन : 370692